शर्बती बाई

विमल मित्र



शर्बतीबाई



शर्बतीबाई



प्रिय सुचेता चट्टोपाध्याय,

तुम्हारा पत्र मिला। अपने बारे में कहानी लिखने की फर्माइश करके, तुमने मुझे भयंकर मुसीबत में डाल दिया है। मैंने कुछेक फर्माइशी कहानियां लिखी जरूर हैं, लेकिन यह कोई जूता तो है नहीं कि 'मेड टू आर्डर', चटपट तैयार कर दिया जाये। अपने खत में तुमने अपना पता भी नहीं दिया। लिफाफे पर पोस्ट आफिस की मुहर देखकर मैंने तुम्हारा ठिकाना खोज निकालने की कोशिश की। तुम्हारे लिफाफे पर शिवपुर डाकखाने की मुहर थी।

शिवपुर? शिवपुर क्या यहां है? लेकिन तुम यह मत सोच लेना कि मैं तुम्हारा पता खोजकर तुम्हें ढूंढने निकलूंगा। तुमने थोड़े में ही जो लिखा है, मैंने सारा कुछ समझ लिया है। हां, यह बात भी समझ में आ गयी है कि नितांत असहाय होकर ही तुमने मुझे पत्र लिखा है कि शायद मैं तुम्हारी कोई मदद कर सकूं। खैर, मैं तुम्हारे कितने काम आ सकता हूं, मुझे नहीं मालूम!

तुम्हारा पत्र पढ़ते-पढ़ते मेरा एक फायदा जरूर हुआ है। बरसों पुरानी किसी और की कहानी याद आ गयी। वह शर्वती बाई नहीं, वनलता थी। वनलता की कहानी।

वनलता मेरी कोई रिश्तेदार नहीं थी। जब वह भी छब्बीस साल की थी, ठीक तुम्हारी तरह, उसकी भी जिंदगी में ऐसी ही

एक भयंकर समस्या आ पड़ी । सच, छब्बीससाला उम्र की समस्या शायद परम बीहड़ होती है। तुमने लिखा है, तुम जिस लड़के को प्यार करती हो, उम्र में वह तुमसे तीन साल छोटा है यानी तेईस साल का है। तेईस की उम्र भला छब्बीस का दर्द क्या समझे, बोलो !

…छब्बीस वर्षीया वनलता ने भी एक दिन तमककर कहा था, 'तुम्हारा दुस्साहस तो कम नहीं !'

तेईस वर्षीय सुधामय ने जवाब दिया, 'असल में पंख देखकर ही हम मोरनी पहचान लेते हैं, मेम साहब !'

वनलता एकदम से बिफर पड़ी, 'तो फिर लीजिए, अब और अच्छी तरह पहचान लीजिए…।'

इतना कहते हुए, न कोई बात-न-चीत, अपने पैरों से चप्पल उतारकर, उसने सुधामय के गाल पर तड़-तड़ जड़ दी । वनलता की चप्पल के तलवे सुधामय के गाल पर बरसते हुए फटकर दो टुकड़े हो गये ।

मेडिकल कालेज के तमाम नर्स-डाक्टर, छात्र-छात्राएं सब-के-सब दौड़े हुए आये । आपरेशन थियेटर के सामने विशाल भीड़ जम गयी । मेहतर, जमादार, हाउस-सर्जन—कोई बाद नहीं गया । माजरा क्या है ? यूं पिटाई क्यों हो गयी ? हाउस-सर्जन पर यूं बेभाव जूते पड़ गये ? मामूली-सी नर्स का ऐसा भयंकर दुस्साहस ? मेट्रन से पूछताछ । एकदम से हंगामा मच गया ।

वनलता गुस्से से हांफ रही थी । अगर उसका वश चलता तो वह उस कम्बख्त डाक्टर के गाल पर दो-चार तमाचे और जड़ देती । भरपूर सजा के लिए मानो इतनी-सी पिटाई काफी न हो ।

मेट्रन ने पूछा, 'क्या हुआ था, मिस राय ?'

वनलता ने सारी घटना बयान कर दी ।

…लेकिन, वह बात अभी रहने दो। छब्बीस की उम्र का दर्द, और कोई भले न समझे, शायद तुम समझ सको। हां, शायद तुम महसूस कर सको, बनलता राय का यह अपमान। उस दिन उस तेईसवर्षीय नौजवान सुधामय ने सचमुच कोई गलती की थी या नहीं, इसका भी फैसला शायद तुम खुद ही कर लोगी। लेकिन…वह किस्सा भी बाद में बताऊंगा।

तुमने लिखा है, तेईस साल का एक नौजवान तुम्हारे साथ गृहस्थी बसाना चाहता है। क्या हुआ, अगर वह तुमसे तीन साल छोटा है? घर बसाने के लिए क्या किसी खास उम्र की जरूरत होती है? नहीं, किसी भी उम्र में घर बसाया जा सकता है। खासकर तेईस की उम्र में बखूबी गृहस्थी शुरू की जा सकती है। तेईस की उम्र को न कभी थकान आती है, न नींद। यह उम्र तो अक्लांत क्षमता से भरपूर होती है। तेईस की उम्र क्या कोई मामूली बात है?

अच्छा, चलो, तुम्हें शुरू से ही बताता हूं। बहुत साल पहले, एक बार मैं ओखा पोर्ट गया था—राजस्थान की सरहद के पार हिंदुस्तान का बिल्कुल आखिरी छोर! मेहसाना, अहमदाबाद, जामनगर। महात्मा गांधी की जन्मभूमि पोरबंदर से गुजरकर हिंद महासागर के तट पर बसा हुआ बंदरगाह। वहां खड़ी हुई हिंद महासागर के पार, अफ्रीका महादेश के तट पर मस्तूल उठाये हुए कतार-दर-कतार व्यापारिक नावें, जहां इस पार के मांझी-मल्लाह खरीद-फरोख्त करने जाते हैं। अपना सौदा बेचकर, वहां की खरीददारी से लदे-फदे, ये फिर अपने देश लौट आते हैं। वहां से लाया हुआ सामान, ये यहां बेच लेते हैं। उनका धंधा ही यही है। समुद्र के किनारे-किनारे बसे हुए मछेरे—इस छोर से उस छोर तक मछेरों की बस्ती।

ईश्वरी प्रसाद पांडे ने ही बताया था, 'चूंकि यह बहुत बड़ा

तीरथ अस्थान है, बाबू साहब, इसीलिए सेठ-महाजन लोग यहां आते हैं। उनके अलावा, बाकी सब तो···वही मांझी-मल्लाहों का कुनबा!'

मैंने दरयाफ्त किया, 'तुम्हारे यहां···यानी इस तरफ कोई बंगाली नहीं है?'

'बंगाली?' ईश्वरी प्रसाद ने अपने दिमाग पर जोर डालते हुए कहा, 'एक बंगाली बाबू भी रहते थे यहां, हुजूर! यहां के बाती-घर में नौकरी करते थे। तीन साल हुए, उनकी भी बदली हो गयी—इसके अलावा, और एक जन भी···'

अचानक उसे याद आ गया, 'हुजूर, एक बंगालिन भी रहती है यहां!'

'कौन?'

'वह भी···यहां से करीब तैंतीस मील दूर। डाग्दर है!'

'कोई बंगाली डाक्टर···हजारों-हजार मील दूर, इस उजाड़ गंवई-गांव में डाक्टरी करने आयी है? ये मांझी-मल्लाह पैसे-वैसे भी देते हैं?'

ईश्वरी प्रसाद ने ही प्रस्ताव किया, 'आपको मैं वहां ले जा सकता हूं, हुजूर! डाक्टर-मां ने बड़ा अस्पताल बनवा दिया है। वहां एक पैसा भी नहीं लगता, हुजूर!'

'अच्छा, नाम क्या है?'

'वनलता मित्र, वैसे लोग उन्हें डाक्टर-मां कहकर पुकारते हैं।'

वनलता मित्र! बहुत दिनों···बहुत सालों पहले, मेडिकल कालेज का हादसा, अचानक याद आ गया। उसका नाम भी वनलता राय था! यह नाम दुनिया में सब लड़कियों का तो होता नहीं।

मैंने दरयाफ्त किया, 'अच्छा, जरा उनका हुलिया बताओ?'

मैंने जिस वनलता को देखा था, वह भी तुम्हारी तरह ही, यही कोई छब्बीस साल की रही होगी। लेकिन वह क्या आज की बात है! उस वक्त भी आखिर क्या उम्र रही होगी! मैं हर शाम मेडिकल कालेज जाया करता था। टुकू मौसी के गालस्टोन का आपरेशन होने वाला था। वह हर वक्त लेटी रहती थीं। मैं उनके लिए घर से खाना ले जाया करता और उन्हें देकर लौट आता। यहीं मैंने वनलता को पहली बार देखा था।

सफेद पोशाक में वह हाथ में थर्मामीटर लिये, इस कमरे से उस कमरे में दौड़ती-घूमती रहती। मासूम-सा चेहरा।

'कुल छब्बीस साल की है, तो क्या हुआ,' मौसी कहतीं, 'मरीजों की बड़े प्यार से देखभाल करती है···'

···ईश्वरी प्रसाद बताने लगा, 'वहां के मांझी-मल्लाह आम तौर से भयंकर पारा-रोग के शिकार रहते हैं। सो, डाक्टर-मां ने पारा-रोग के इलाज के लिए अस्पताल बनवा दिया है। वहां लोगों को एक पैसा भी नहीं लगता, देखभाल भी बढ़िया। डाक्टर-मां रोगियों की जी-जान से देखभाल करती हैं।'

···मुझे याद है, जब सारी जगहें देख डाली—रुक्मिणी-मंदिर, द्वारका-मंदिर, ओखा-मंदिर कहीं कुछ देखना बाकी नहीं रहा, तब किराये की बैलगाड़ी में बैठकर, डाक्टर-मां का अस्पताल देखने चल पड़ा। ओखा-मंदिर से करीब तैंतीस मील लंबा रास्ता। लेकिन बेहद खराब रास्ता। मोटर नहीं जा सकती, इसलिए बैलगाड़ी से हिचकोले खाते-खाते चल पड़े हम दो राहगीर···मैं और पंडा ईश्वरी प्रसाद। ईश्वरी प्रसाद रास्ते भर बातें करता रहा···

वैसे वनलता को लेकर कोई कहानी गढ़ना मुश्किल है। वनलता की जिंदगी की शुरुआत और अंत बिल्कुल सपाट···इकसार हैं। कम-से-कम उस वक्त मेरा यही खयाल था। मुझे लगा था,

वनलता की जिंदगी में उगे हुए सवालों की तरह उनके जवाब भी बेहद सहज और सीधे हैं। सीधी-सपाट धरती की तरह सरल। शुरू-शुरू में थोड़ी-बहुत चढ़ाई भले हो, लेकिन अंत में फिस्स! सवाल चाहे जैसा हो, उसका जवाब अगर मुश्किल न हो तो उसे लेकर कोई कहानी गढ़ना भी अजीब लगता है।

...उस दिन भी यथारीति ठीक चार बजे अस्पताल पहुंच गया। वही-वही दृश्य। चारों तरफ मरीजों के कतार-दर-कतार बिस्तर। कातर आंखें।

कमरे में कदम रखते ही टुकू मौसी ने छूटते ही कहा, 'पता है, आज यहां एक अजीब कांड हो गया!'

जिंदगी में होने वाली तीन घटनाओं में, कम-से-कम दो घटनाएं आम तौर पर अस्पताल में ही घटती हैं। जन्म और मृत्यु का नियम सनातन है। ऐसी आम घटनाओं में कोई सिर भी नहीं खपाता। सच तो यह है कि इसे किसी कांड के रूप में लिया ही नहीं जाता।

मैंने यूं ही पूछ लिया, 'कौन-सा कांड?'

टुकू मौसी ने कहा, 'हमारे यहां की एक नर्स ने, किसी डाक्टर को जूता जड़ दिया!'

'कौन-सी नर्स?'

'अरे वही;...वो रही!'

उस वक्त वनलता को मैंने पहली बार देखा था। सिर पर स्कार्फ, हाथ से टेम्परेचर-चार्ट। हां, उस औरत को देखकर यह बिल्कुल नहीं लगा कि वह किसी मर्द को जूते मार सकती है। मैंने महसूस किया, सब चोर-निगाहों से उसे ही घूर रहे हैं।

और वह डाक्टर?

डाक्टर सुधामय मुझे कहीं नजर नहीं आया। लेकिन अस्पताल में, इस सिरे से दूसरे सिरे तक, सिर्फ वही चर्चा!

महीन-सी खुसुर-फुसुर और फुसफुसाहटें मानो चर्चा के लिए कोई चटपटा मसाला मिल गया हो।

टुकू मौसी करीब महीने भर उस अस्पताल में रही। बाद की सारी कहानी उन्होंने ही बतायी।

सुधामय जब वनलता से मिला था, तब उसने यही बताया था।

उसने कहा, 'अब मैं किसी को मुंह दिखाने के काबिल नहीं रहा, आपने मेरा बहुत बड़ा नुकसान कर दिया!'

वनलता ने जवाब दिया, 'आपका क्या खयाल है, मैं भी क्या किसी को मुंह दिखाने लायक रह गयी हूं?'

'आप, खैर, औरत हैं! अगर घर से बाहर न भी निकलें, तो भी काम चल जायेगा। लेकिन मैं···?'

किसी के दरवाजा खटखटाने पर उसने दरवाजा खोल दिया। सामने सुधामय को देखकर वह भौचक्की रह गयी। कुछेक पलों तक उसके मुंह से मानो आवाज ही नहीं निकली।

जिन दो प्राणियों में सुबह-सवेरे ऐसा भयंकर झगड़ा हो चुका हो, दो दिनों बाद ही, वे ही लोग भला इतनी अंतरंगता से कैसे बातचीत कर सकते हैं? खैर! जिन लोगों को इंसान के स्वभाव-चरित्र के बारे में इत्ती-सी भी जानकारी होगी, वे लोग उनकी दोस्ती पर हरगिज अवाक् नहीं होंगे।

आपस में एक-दूसरे से माफी मांगने का पर्व खत्म होने के बाद, पहले सुधामय ने ही अपनी तरफ से बातचीत की पहल की, 'अच्छा, अब मैं चलूं···?' और वह उठ खड़ा हुआ।

अचानक वनलता ने पूछा, 'आप मेरा एक काम कर देंगे?'

सुधामय ठिठक गया। उसनें पलटकर वनलता की ओर देखा। उसकी आंखों में अचरज झलक आया, 'काम ? कौन-सा काम ? बताइए न !'

'मेरी बीस दिन को तनखाह बाकी है। आप ला देंगे ?'

'क्यों ? आप खुद भी तो ला सकती हैं ?'

'मैंने नौकरी छोड़ दी है···' पल-भर चुप रहने के बाद उसने अगला वाक्य जोड़ा, 'जो हादसा हो गया, उसके बाद मेरा वहां नौकरी करना शोभन नहीं था।'

सुधामय विस्मय से गूंगा हो आया। थोड़ी देर बाद जब उसे होश आया, तब उसने शिथिल आवाज में कहा, 'लेकिन नौकरी तो मैंने भी छोड़ दी है। अब मैं भी कालेज नहीं जाता।'

अब वनलता के चौंकने की बारी थी। एकाध पल की खामोशी के बाद उसने फिर कहा, 'आपका क्या ? आपने डाक्टरी तो पास कर ही ली है···कहीं और नौकरी कर लेंगे।'

'इसीलिए तो माफी मांगने आया था···'

'ना। माफी मांगने की भी जरूरत नहीं थी। मेरी भी तो कम गलती नहीं थी ! असल में उस दिन सुबह से मेरा मन ठीक नहीं था। उसपर से दो महीने का घर-भाड़ा सिर पर चढ़ गया था। बात यह है कि आप···मुझ-जैसों की हालत का सही-सही अंदाजा नहीं लगा सकते···'

सुधामय दुबारा धम्म से बैठ गया, 'आपको भी शायद मेरी हालत का ठीक-ठीक अंदाजा न हो। पता है, उस वारदात के बाद से, मैं अपने घर ही नहीं गया···'

'तब, आप दो दिनों तक रहे कहां ?'

'सड़क पर, पार्क में। अखबारों में यह खबर प्रकाशित होने के बाद, किसी दोस्त के घर जाने में भी शर्म आयी···' अचानक वह दुबारा उठ खड़ा हुआ, 'अच्छा, अब मैं चलूं···'

'जायेंगे कहां ?'

'यह नहीं मालूम। अब तो न घर जा सकता हूं, न होस्टल…'

'फिर…?'

'मुझे पता है, डाक्टरी पास कर चुका हूं, भूखों नहीं मरूंगा, लेकिन इस वक्त मेरे हाथ में अगर थोड़े-से भी पैसे होते, तो कहीं और चला जाता…आज ही !'

सुधामय ने जाने के । .ए कदम बढ़ाया। वनलता खामोश निगाहों से उसे जाते हुए देखती रही। सुधामय जब नीचे, बिल्कुल आखिरी सीढ़ी तक उतर गया, तब उसने आवाज दी, 'सुधामय जी, जरा सुनिए…'

सुधामय ने निगाहें उठाकर उसकी तरफ देखा, 'आपने मुझसे कुछ कहा ?'

वह दुबारा सीढ़ियां चढ़कर ऊपर आया। वनलता दरवाजे पर ही खड़ी थी।

उसने कहा, 'आप मेरी एक बात मानेंगे ?'

'कौन-सी बात ?'

वनलता ने चटपट अपनी एक चूड़ी उतारकर सुधामय को जबरन थमाते हुए कहा, 'यह गिलट नहीं, निखालिस सोना है। मुमकिन है, आपके काम आ जाये…'

सुधामय सचमुच हैरान रह गया। उसकी जुबान पर मानो ताला पड़ गया हो।

वनलता ने दुबारा कहा, 'उम्र में आप मुझसे छोटे हैं, लेने में एतराज न करें…'

'इससे तो बेहतर था, आप मुझे दो जूते और मार लेतीं ! यहां तो कोई देख भी नहीं रहा, मैं वह भी बर्दाश्त कर लेता, लेकिन…'

वनलता की आंखें अनायास ही झुक गयीं। उसने झिझकते

हुए कहा, 'सुनिए, मेरी माली हालत बहुत अच्छी है, ऐसा भी नहीं है। लेकिन...'

'यानी आप मुझे मुआवजा दे रही हैं?'

'मान लीजिए, यह सच भी हो! मैं तो किसी तरह खोज-खाज कर अपने लिए कोई-न-कोई नौकरी जुटा ही लूंगी! लेकिन आपकी उम्र अभी कच्ची है...रास्ता लंबा है! अभी तो बहुत कुछ होना है...'

'छोड़िए! लेकिन आप यह चूड़ी वापस ले लें,' चूड़ी वनलता के हाथ पर रखकर उसने जाने के लिए कदम बढ़ाया।

वनलता ने लपककर उसका हाथ पकड़ते हुए कहा, 'सुनिए, मैं आपसे विनती करती हूं, इसे ले लीजिए...'

सुधामय ने हैरत से वनलता का चेहरा पढ़ने की कोशिश की। इस लड़की को उसने पहले भी कितनी बार देखा है, लेकिन आज पहली बार उसके चेहरे पर मानो कोई नयी भाषा उभर आयी हो, जिसका अर्थ भी बिल्कुल नया-नया हो! सुधामय ने इस बार हाथ छुड़ाने की कोशिश नहीं की। उसी तरह हाथ-पर-हाथ रखे हुए उसने सवाल किया, 'आप चाहती हैं, यह चूड़ी मैं ले लूं?'

'मैं आपसे उम्र में बड़ी हूं। आपको मेरी बात माननी ही होगी।'

'लेकिन आपके सिर पर भी तो दो महीने का किराया चढ़ा हुआ है?'

'मैं औरत हूं! औरतें मर्दों से कहीं ज्यादा सहन कर सकती हैं।'

...और उसके मुंह पर ही उसने अपने कमरे का दरवाजा बंद कर लिया था।

ईश्वरी प्रसाद ही बताता रहा, 'इस नाहरगढ़ में उस बंगाली डाक्टर बाबू के आने तक, लोग बीमार पड़ने पर, टोना-टोटका करते, देवी-देवताओं की मनौतियां मानते और जो लोग पैसे वाले थे, वे वैद्य जी की शरण में जाते। राज-वैद्य के दरबार में पहले पूरे पंद्रह रुपये नजर करो, दवा का दाम अलग…!'

ईश्वरी प्रसाद मानो कोई किस्सा सुना रहा हो, 'नाहरगढ़ छोटा-सा शहर है, तो क्या हुआ ? यहां का राजा" बिल्कुल खानदानी बादशाह था। राजा की तीन रानियां थीं। हर रानी की खिदमत के लिए तेरह दासियां। छब्बीस बांदियां। लाव-लश्कर, खोजा, राजकुमार, लाल जी साहब वगैरह-वगैरह। बिल्कुल शाही ताम-झाम।

'हां, तो किसी एक सुबह, इसी अजमेर स्टेशन के प्लेटफार्म पर, कोई छोकरा-सा डाक्टर उतरा ! संग में न कोई सूटकेस, न बोरिया-बिस्तर ! हां, चेहरे से, तेईस-चौबीस की उम्र का अंदाजा जरूर लग जाता था।'

जब मैं अजमेर में था, इस कहानी का थोड़ा-बहुत हिस्सा सदानंद बाबू से भी सुन चुका था।

सदानंद बाबू ने बताया था, 'अरे साहब, यह जो राजस्थान नामक मुलुक देख रहे हैं न ! जिसका कहीं ठौर-ठिकाना नहीं, उसे यहां जरूर पनाह मिल जाती है।'

सदानंद बाबू ने यहां बंगाली मिठाइयों की दुकान खोल रखी है। अगर कोई बंगाली जीव अजमेरशरीफ आता है, तो उसका इस दुकान पर आना बिल्कुल निश्चित है। बंगाल से इतनी दूर

आकर भी, छेने की मिठाइयां, बंगाली रसगुल्ला, मछली-भात…एकमात्र यहीं मिलता है। बीकानेर, जोधपुर, जयपुर, चित्तौड़—चार दिशाओं में बसे हुए चार अलग-अलग राज्य—बीच में यह अजमेर शहर।

सदानंद बाबू ही बता रहे थे, 'नाहरगढ़ के राजमहल में ब्याह पड़ा। संदेश और रसगुल्लों का जिम्मा मुझ पर। उस पर से यह हुक्म भी जारी किया गया कि मंझली रानी को रसगुल्ला बनाना सिखाना भी होगा। वहीं जाकर देखा, राजवैद्य भी बंगाली है! कमसिन उम्र। लेकिन मैंने उसे देखते ही पहचान लिया। मैंने पूछा, 'आप यहां?'

…हां, यह बहुत साल पहले की घटना है! एक छोकरा-सा डाक्टर…स्टेशन से सीधे मेरे यहां आ धमका। उस वक्त मैं दुकान बंद करने जा रहा था।

उसने आते ही मुझसे दरयाफ्त किया, 'यहां किसी धर्मशाला का पता बता सकते हैं?'

मैंने पूछा, 'आप आ कहां से रहे हैं?'

'कलकत्ता।'

'आपके साथ और कौन-कौन हैं?' उसकी चुप्पी से मैं समझ गया, जब वह अकेला आया है, तब तीर्थयात्री तो हरगिज नहीं है।

मैंने दुबारा पूछा, 'आप करते क्या हैं?'

'मैं डाक्टर हूं।'

मैं अचरज में पड़ गया। डाक्टरी करने के लिए बंगाल छोड़कर यहां क्यों? जरूर कहीं कुछ गड़बड़ है।

मैंने फिर पूछा, 'पास में कुछ रुपये-पैसे भी हैं या बिल्कुल ठनठन गोपाल हो?'

'नहीं, पैसे हैं।'

लेकिन मैं फौरन ताड़ गया, यह झूठ बोल रहा है। गांठ में पैसे होते तो चेहरे की रंगत कुछ और होती। शायद घर से गहने-वहने चुराकर भाग आया है। यहां तो ऐसे जाने कितने-कितने छोकरे आते हैं। मैं भी तो एक दिन अपनी मां से झगड़ कर, इस रेतीले देश में भाग आया था। मुमकिन है, यह भी मेरी ही तरह कोई भगोड़ा हो। मेरे हाथ में देने की मिठाई की ट्रे थी। उसे बगल वाले मकान में देना था।

मैंने कहा, 'तुम जरा बैठो, मैं आता हूं।'

थोड़ी ही देर बाद मैं वापस लौटा। भला कितनी-सी देर हुई थी? यही कोई दो या तीन मिनट। दुकान में आकर देखा, चारों ओर, भांय-भांय सन्नाटा। कहीं कोई नहीं था। लगता है, मेरी पूछताछ के ढंग से उसे कुछ शक हो गया। दुकान से बाहर निकलकर मैंने इधर-उधर नजर दौडायी। अभी जहां सिंधियों की दुकानें नजर आ रही हैं, उन दिनों बिल्कुल खाली मैदान था। सामने की रेल-लाइन तक साफ नजर आती थी। उस तरफ आज खड़े होने पर, पता पाना भी मुश्किल। दूर-दूर तक मुझे उसका कोई अता-पता नहीं मिला।

हां, तो साहब नाहरगढ़ के राजमहल में उससे दुबारा मुलाकात हो गयी। नाहरगढ़ इस्टेट कोई ऐसी-वैसी रियासत नहीं है। शहर छोटा है तो क्या हुआ? नाहरगढ़ के राजा खानदानी बादशाह थे। राजा की तीन रानियां। हर रानी के लिए तेरह-तेरह दासियां, तैंतीस बांदियां, लाव-लश्कर, खोजा, राजकुमार, लालजी साहब, लालजी बाई – बिल्कुल शाही ताम-झाम! ऐसे खानदानी बादशाह की नेक नजर में पड़ना क्या आसान बात है?

सदानंद बाबू की आंखों और जुबान से मानो कहानियां र रही हों, 'लोग कहते हैं, बगाली-बच्चा बड़ा घरघुसरा होता

लेकिन, साहब, आप समूचा राजस्थान घूम आइए, जितने भी स्टेट हैं, वहां के दीवान, नायब, डाक्टर, कानूनी सलाहकार—सब-के-सब बंगाली। उससे पहले नाहरगढ़ रियासत में एक विहारी राजवैद्य नियुक्त थे। कोई बीमार होता, वह हर्रे की गोलियां खिलाते। लेकिन डाक्टर मित्र के आने के बाद से अब किसी को भी वैद्य जी की गोलियां रास नहीं आतीं।'

मैंने सवाल किया, 'डाक्टर ने इस राजा को कैसे पटा लिया?'

'डाक्टर ने बताया था—मंझली रानी यशोदा बाई सख्त बीमार थीं। राजवैद्य का इलाज भी चल रहा था, लेकिन बीमारी दूर होने का नाम ही नहीं ले रही थी। रानी बिल्कुल मरणासन्न। इधर मैं अजमेर से पैदल-पांव भटकता हुआ, नाहरगढ़ आ निकला। राजमहल के पाइक-बरकंदाज यानी गुलाम-चाकर, दुकानों पर सौदा-सुलुफ खरीदने आते, बाइस्कोप में सनीमा देखने आते या फिर रास्ते में घूमते-फिरते मिल जाते। उन्हीं की जुबानी यह खबर सुनकर मैंने दावा किया, मैं यशोदा बाई को रोगमुक्त कर सकता हूं।

लेकिन रानी साहिबा को देखूं कैसे? राजा के अंदरमहल में घुसने कौन देगा? बादशाह का पंजा यानी निशानी चाहिए। राजा न सही, कम-से-कम दिलखुशा सिंह का पंजा चाहिए! दिलखुशा सिंह था—अंदरमहल का खास खोजा। अंदरमहल का खास पहरेदार। हर ओर उसकी गति-विधि। रानी साहिबा से लेकर बड़ी रानी लाल बाई, बांदी, नौकरानी तक को, अंदर-महल से बाहर आने के लिए दिलखुशा सिंह का पंजा यानी इजाजत चाहिए।

मैंने पूछा, 'तब क्या उपाय है?'

उन्हीं लोगों ने बताया, 'आप रेजिडेंट साहब से मुलाकात

कीजिए।'

रेजिडेंट साहब ने राजा साहब के नाम एक खत लिखकर दे दिया।

अब राजा साहब से भेंट होना भी इतना आसान तो नही था। राजा आखिर राजा ठहरा! राजा दलजीत सिंह बहादुर। दरबारी, ताबेदार, कर्मचारियों का कहना है, महासागर से लेकर दूर हिमालय तक उनका साम्राज्य फैला हुआ है। नाहरगढ़ के पूर्वज राजा हिकमत सिंह बहादुर ने मुगल सल्तनत के खिलाफ युद्ध करके, खुद शहंशाह अकबर से अपनी बहादुरी के लिए वाह-वाही हासिल की थी। लेकिन अब बहादुरी दिखाने का मौका ही नही आता। जरूरत पड़ने पर, अब राजा साहब रेजिडेंट साहब या बड़े लाट साहब के साथ कभी-कभार शिकार पर जरूर चले जाते हैं। नौकर-ताबेदार ढाक-ढोल पीटकर, बाघ-भालुओं को खदेड़ते हुए, राइफल के निशाने के सामने ले आते और राजा साहब हाथी के हौदे में बैठे-बैठे धांय से गोली दाग देते। हां, तो मंझली रानी की बीमारी की वजह से वह भी उदास रहा करते। रेजिडेंट साहब की चिट्ठी पढ़कर उन्हें कोई दुविधा नही रही। पंजा छापकर, उन्होंने ताबेदार को हुक्मनामा थमा दिया, लेकिन यह भी कह दिया कि डाक्टर जब मरीज को देखकर लौटे, तब उससे राजा की निशानी छीन ली जाये। जितने दिन बीमारी ठीक नही होती, उसे अंदरमहल में जाने के लिए निशानी अता की जाये, वापसी में ले ली जाये।

अंदरमहल में दाखिल होने के लिए यथारीति मुझे भी पंजा दिखाना पड़ा। खोजा दिलखुश सिंह ने काफी गौर से उस निशानी की जांच-परख की। उसके बाद मंझली रानी के महल में ले गया।

इसी तरह तीन दिन गुजर गये। डाक्टर को तीन बार अंदर-

महल में जाना-आना पड़ा। इलाज चलता रहा। रानी साहिबा की सारी दवाएं अजमेर से मंगवायी गयीं। डाक्टर ने दिलखुश सिंह को अच्छी तरह समझा भी दिया। उसके बाद राजा की निशानी दिखाकर, उसे राजकोष से रुपये भी दिलवा दिये गये।

लेकिन अभी तक कोई आश्चर्यजनक घटना नहीं घटी थी।

···अचानक जैसे धमाका हुआ। राजा साहब के पास खबर पहुंची कि नये बंगाली डाक्टर ने रानी साहिबा को रोगमुक्त कर दिया। उसे राजा साहब के आम-दरबार में तलब किया गया।

सदानंद बाबू ने ही बताया, 'साहब, इसी को कहते हैं तकदीर का सिकंदर! यह मामूली-सा छोकरा, मुमकिन है अपनी मां की चूड़ियां चुराकर भाग आया हो ··यहां आकर एकदम से राजवैद्य बन गया। पुराने राजवैद्य की छुट्टी हो गयी। उनसे सिर्फ जागीर नहीं छीनी गयी। राजे-रजवाड़ों का मुआमला ठहरा! किसकी किस्मत में तीन हजारी जागीर बदी है कौन जाने! यानी कब किसकी तकदीर में फूलों की माला है और कब जूतों की, कौन बता सकता है?

मैंने उस डाक्टर से पूछा, 'आपने तो डाक्टरी पास की है न? आपको नौकरी की क्या कमी? इतने दिनों में, अपने बंगाल में कोई नौकरी नहीं जुटा सके?'

डाक्टर ने जवाब दिया,'असल में किसी वजह से अपने देश में मुंह दिखाने लायक नहीं रहा···इसीलिए लाचार होकर आना पड़ा, वरना···'

मैंने फिर पूछा, 'क्यों! क्या हुआ था?'

डाक्टर चुप रह गया।

इधर राजा साहब ने उसके लिए विशाल हवेली बनवा दी। हवेली के सामने लंबा-चौड़ा बाग। सिर्फ राजसी ठाट-बाट ही नहीं, राजकन्या भी…'

'सो, कैसे?'

सदानंद बाबू ने दुबारा बातों की कड़ी जोड़ दी, 'तो फिर सुनिए…'

हां, वह निहायत अजीबोगरीब इतिहास था! कम-से-कम हमारी आंखों के लिए वह इतिहास ही था। नाहरगढ़ के इतिहास में भी लंबी दास्तान बन गयी। नाहरगढ का राजा भयंकर विलासी था। साहब, काम-धाम के बजाय हर वक्त सिर्फ अय्याशी में डूबा रहता। तभी तो मैं गया था रसगुल्ले बनाने और इनाम में ऐंठ लाया हीरे की पांच-पांच अंगूठियां, टसर की धोती और पूरे सात सौ रुपइये। राजमहल के नौकर, ताबेदार, दरबारी—सभी रसगुल्ले की वाहवाही में पचमुख हो उठे। ऐसी मिठाई उन्होंने पहले कभी नहीं खायी थी। बड़ी रानी ने अपने हाथ की पन्ने की अंगूठी इनाम देकर, अपनी तारीफ भेजी। वैसे उन्हें रसगुल्ला बनाना क्या खाक आता? अरे साहब, यह मिठाई बनाना क्या इतना आसान है? तब तो हर कोई इस पकवान में विशारद हो उठता। हां, तो, साहब… होते-होते मामला यहां तक आ पहुंचा कि वह डाक्टर राजा साहब का अत्यंत दुलारा हो उठा। चाहे कोई बीमारी हो या न हो, डाक्टर साहब को जब-तब तलब किया जाता। अंदरमहल में बढ़िया

शर्बत बना है, बुलाओ डॉक्टर साहब को ! इधर डाक्टर को भी भला क्या काम ? राजवैद्य तो हो ही गया, तीन हजारी जागीर का भी मालिक बन गया । राजा के हुक्म पर हुजूर के दरबार में हाजिरी देना ही तो राजवैद्य का असली काम है।

···लेकिन उन दिनों भी जब वह फुर्सत में होता या रेगिस्तान की तपती हुई रातों में जब वह अपने कमरे में अकेला लेटा होता या नींद न आने पर बेचैनी से करवटें बदल रहा होता, तब उसे किसी की बेतरह याद आती । आते वक्त उसने जबर्दस्ती उसके हाथों में सोने की चूड़ी थमा दी थी ।

सुधामय ने कहा था, 'सुनो, किसी-न-किसी दिन तुम्हारा उधार जरूर चुका दूंगा इस वक्त इस वादे के अलावा मैं और कुछ देने की स्थिति में नहीं हूं । पता है···?'

वनलता ने कहा, 'इसे उधार क्यों मानते हो ? मान लो, मैंने तुम्हें दिया है···'

उस दिन सुधामय उसकी बातों पर खूब-खूब हंसा था।

वनलता ने पूछा था, 'अब क्या यह भी याद दिलाना होगा कि खत बराबर देते रहना···'

सुधामय ने पहुंच का एक खत भी डाला था । उसने लिखा था—'राजपुताने के इस बंजर रेगिस्तान में, अभी तक किसी द्वीप की तलाश में भटक रहा हूं। रास्ते-रास्ते भुने चने फांकता हूं और सिर्फ कुएं के पानी का आसरा-भरोसा है। तुम्हारी चूड़ी, खर्च करने में आज भी डर लगता है। बस, उसे हर वक्त अपने पास रखता हूं। इसी बहाने तुम भी कहीं मेरे पास···बिल्कुल करीब हो···यह तसल्ली बनी रहती है।'

ना, उस खत में कहीं भी वनलता से चले आने का आग्रह नहीं था। वनलता वह खत कई-कई बार पढ़ गयी। थोड़ी देर बाद खत को आंचल में बांधकर, उसने चूल्हे पर चावल चढ़ा

दिये। छब्बीस साल की औरत अगर मन की सच्ची बात लिखने पर उतर आये, तो कहीं उसके आत्माभिमान को ठेस पहुंचती है। अभी तक उसे कहीं नौकरी नहीं मिली, लेकिन उसने लिखा—'एक नये अस्पताल में नौकरी मिल गयी है। कलकत्ते से जरा दूर जरूर है। सो, अगर वक्त पर मेरा खत न मिले, तो तुम परेशान न होना…'

दोपहर को खाने के बाद, वह जमीन पर ही पड़ गयी—ऊंह, सुधामय तो देखने आ नहीं रहा!

लेकिन राजस्थान तो कलकत्ते में नहीं, न ही नाहरगढ़ में कलकत्ता शहर!

डाक्टर सुधामय की उम्र अभी कुल तेईस साल है। वह भला छब्बीस की उम्र का दर्द क्या समझता? सुबह-सवेरे नींद से जागकर उसका पहला काम होता—सजना-सवरना। राज-दरबार में जाकर राजा दलजीत सिंह बहादुर को कोर्निस करके, बैठे रहना। दरबार खत्म होते ही, घर लौटकर किसी तरह खाना गले से नीचे उतारकर, उसे फौरन राजमहल के तहखाने की ड्यूटी के लिए भागना पड़ता। दोपहर की गहरी नींद के बाद, राजा जुआ खेलने बैठते। पहले कोई दूसरा साथी था, अब उसकी जगह हैं, डाक्टर साहब। कभी राज्य के राजमन्त्री, दीवान, रानी जी, वजीर, पानवान—सभी जुए के खेल में शामिल होते थे, लेकिन अब सिर्फ डाक्टर!

राजा साहब एक दिन एकाएक पूछ बैठे, 'तुम जुआ खेलना जानते हो, डाक्टर?'

राजा-महाराजाओं के सामने कभी 'ना' नहीं करनी चाहिए।

सुधामय ने जवाब दिया, 'जानता हूं हुजूर!'

हां, कभी सुधामय भी जुआ खेला करता था। उन दिनों उसे अड्डेबाजी का शौक जो चर्राया था। लेकिन अब तो अपनी

ौकरी कायम रखनें के लिए जुआ खेलना जरूरी हो गया। ः
जुआ खेलते-खेलते ही, एक दिन उसकी जिंदगी में चरम उपलब्ि
के क्षण भी आ पहुंचे। वैसे इसे आत्म-विभ्रम भी कहा जा सकत
है। सुधामय अगर यूं जुआ न खेलता, तो वनलता की जिंदग
भी यूं अभिशप्त न होती और कहानीकार की हैसियत से मैं भ
शर्वती वाई की कहानी से अनजान रह जाता।

···यह कहानी भी सदानंद बाबू ने ही बतायी थी, 'साहब
मैं वहां गया तो था रसगुल्ले बनाने, लेकिन सुन आया शर्वत
वाई की कहानी···'

राजे-रजवाड़ों के अंदरमहल के किस्से! पहले कभी देखा नहीं और जिसने देखा न हो, उसके लिए कुछ समझना भी नामुमकिन। अंदरमहल में चारों ओर गुलावी ओढ़नी और असूर्यम्पश्याओं की चकित निगाहों की भीड़। कहीं घुमावदार सुरंग, कहीं नैनों के कटाक्ष-वाण! सैकड़ों ढंग के भोग-विलास और लालची उसांसों के मेले! घाघरा और काजल-सुरमे का रहस्य! वाहरी दुनिया की कोई खवर यहां तक नहीं पहुंचती। यहां ज्यादातर ऐसी ही औरतों की कहानियां मशहूर हैं, जो इसी अंदरमहल के अंदर जन्मीं और यहीं मर गयीं। तीज-त्योहारों और होली-दीवाली पर यहां नगर के सेठ-साहूकार, जमींदारों की ठकुराइनें मिलने आतीं। उत्सव के वाद, उनमें से कुछेक अपनी हवेली लौट पातीं, जिन पर खास राजा साहव की नजर गड़ जाती, वे फिर कभी वापस नहीं जातीं। ऐसे ही जाने कितनी-कितनी औरतों की ऊंची-ऊंची महत्त्वाकांक्षाएं, ताल-

कटोरा के कैदखाने में दम तोड़ गयीं। वैसे जिस पर एक बार राजा की नजर गड़ गयी, उसकी जिंदगी की कोई साध अधूरी नहीं रहती। उसके लिए जाने कितनी-कितनी तदबीर-कोशिशें की जातीं। महारानी की खुशामद करो, राजमाता, पर्दानशीनें, पासवानजी—हर किसी के तलुए चाटो, सबसे ज्यादा अंदरमहल के एकमात्र पहरेदार खोजा दिलखुश सिंह की आरजू-मिन्नत करो। शर्वती बाई भी उन्हीं औरतों में से एक थी, लेकिन फिर भी उन सबसे कहीं बिल्कुल अलग और अनोखी!

...वैसे जुए के खेल में ज्यादातर राजा साहब ही हारते।, खैर, हारने में ही तो खेल का असली मजा है। राजा साहब उत्साह से गद्‌गद हो जाते।

सदानंद बाबू ने ही आगे की कहानी भी सुनायी थी।

'बात यह है, साहब, उस जमाने के राजा-महाराजाओं के पास ढेर-ढेर काम-काज थे। युद्ध थे, समझौते थे। लेकिन आजकल के राजाओं के पास कौन-सा काम है? अब तो, बस, कहां कौन खूबसूरत लड़की है, उठा लाओ! किसकी बीवी अप्सरा है, पकड़ लाओ! हर राजा का अंदरमहल, ऐसी ही सैकड़ों-हजारों औरतों से भरा हुआ है। इस अंदरमहल में राजा साहब ही एकमात्र मर्द। लेकिन यह सब रास-रंग भी हर वक्त भला नहीं लगता। इसीलिए बीच-बीच में शिकार-टिकार का आयोजन भी किया जाता है, जुआ-पाशे के खेल भी चलते हैं। इसके अलावा नाहरगढ के राजा साहब की उम्र भी बहुत कम है। तीन-तीन रानियां लेकिन वे रानियां भी राजा साहब से उम्र में काफी बड़ी। महाराजा साहब की उम्र जब कुल बारह साल की थी, तब बड़ी रानी बीस साल और मंझली रानी सोलह साल की थीं। छोटी रानी साहिबा तो तब आयी भी नहीं थी। ब्याह के समय हर रानी के साथ दहेज में आयी हुई तेरह-चौदह

दासियां। वे सब भी जवान-जहान! इसके अलावा अंदरमहल में रानी की सखियां, उपहार में मिली हुई लड़कियां। कुछेक औरतें तो स्वेच्छा से चली आयी हैं, बहुत-सी औरतों को बहका-फुसलाकर लाया गया है। रात वाले गाने-बजाने के जलसे में अगर उनमें से कोई औरत राजा के मन भा गयी तो उसकी तो मानो तकदीर ही खुल गयी! इसी तरह जाने कितनी-कितनी औरतें साजिश की शिकार होकर तालकटोरा के तहखाने में हमेशा-हमेशा के लिए गुम कर दी गयी हैं, ताकि वे राजा साहब की नजर में न पड़ें। यूं भी, खूबसूरत औरतों की तकदीर में ज्यादातर दुःख ही लिखा होता है! खैर साहब, मंझली रानी को रसगुल्ला बनाना सिखाने के लिए कई बार अंदरमहल में गया, लेकिन कभी किसी हसीना की एक झलक तक नहीं मिली! खोजा साहब का कानून बेहद सख्त था।

लेकिन डाक्टर की बात बिल्कुल अलग थी। एक तो राजवैद्य, उस पर से राजा साहब का दुलारा!

खेल में डाक्टर ने राजा को आगाह किया, 'हुजूर, आपका हाथी तो कैद हो गया।'

राजा साहब ने खुश-खुश आवाज में जवाब दिया, 'तुम बस, देखते रहो, डाक्टर, तुम्हारे वजीर की क्या दुर्गत करता हूं!'

राजमहल की सतह से, बहुत नीचे गड़ा हुआ तहखाना। इसीलिए गर्मियों में वहां बड़ा आराम रहता है। अंदरमहल से यहां तक आने-जाने के लिए लंबी सुरंग। जरूरत के वक्त राजा साहब के ताली बजाते ही, फौरन उनके हुक्म की तामील की जाती। घाघरा नचाती हुईं दासी-बांदियां फर्माइश के मुताबिक पानी या शर्बत या अन्य पेय पेश करतीं।

राजा साहब, अपने मातहत कर्मचारियों को सुनाकर कहते, 'इस डाक्टर की बुद्धि वाकई बड़ी तेज है!'

मैंने पूछा, 'उसके बाद क्या हुआ, बताइए न !'

सदानंद बाबू ने कहानी को आगे बढ़ाते हुए कहा—उसके बाद ही तो शर्वती बाई आयी। उस दिन दोपहर से ही बाजी बिछ गयी। एक के बाद एक छह बार राजा साहब हार गये। सातवीं बार भी वह हारने ही वाले थे यानी बाजी मात होने वाली थी। उफ ! इस कमबख्त डाक्टर से जीतने का कोई उपाय नहीं। ठीक उसी वक्त एक अजब कांड हो गया।

उस दिन भयंकर गर्मी थी। तहखाना था तो क्या हुआ ? चैत की जला देने वाली गर्मी ! बाहर लू चल रही थी। चिल-चिलाती धूप में सांस आकुल-व्याकुल हो रही थी। प्यास के मारे गला सूखकर बिल्कुल काठ। डाक्टर को प्यास लग आयी।

लेकिन उसे किसी तरह के अर्क या नशीले पेय का व्यसन नहीं। उसने सिर्फ एक गिलास पानी की फर्माइश की।

पानी !

राजा साहब ने ताली बजायी। इस ताली का मतलब खास-खास लोग ही समझ सकते थे। तालियों की आवाज पर सुरंग की राह प्रकट हुई—शर्वती बाई !

खेल छोड़कर डाक्टर की निगाहें एकटक शर्वती बाई पर गड़ गयीं। गुलाबी रंग का बूटेदार घाघरा। वक्ष पर वित्ते भर की कंचुकी और जरीदार जाफ़रानी रंग की महीन ओढ़नी ! अंगों को ढंकने के लिए, बस, इत्ते से कपड़े। सिर पर सोने का घड़ा। अपने दोनों नाजुक हाथों में घड़ा थामे हुए, वह कमरे में आ खड़ी हुई—मानो वह जमीन पर चलकर नहीं, पानी में तैरती हुई आयी हो।

पानी पीकर डाक्टर ने दुबारा चाल चली। लेकिन उस दिन फिर खेल जमा ही नहीं।

राजा साहब अवाक् रह गये। डाक्टर पहली बार हार गए

था।

उठने से पहले, राजा ने सिर पर पगड़ी रखते हुए कहा, 'तुम्हें मैं एक उपहार दूंगा, डाक्टर!'

'उपहार?'

राजा साहब ने सवाल किया, 'तुमने तो अभी ब्याह नहीं किया न?'

'नहीं…'

'चलो, अब तुम ब्याह कर लो!'

डाक्टर ने हैरत-भरी आवाज में पूछा, 'किससे?'

'शर्वती से तुम्हारा ब्याह कराये देता हूं…'

इधर…मीलों दूर…कोई लड़की अस्पताल में ड्यूटी करते-करते अक्सर अनमनी हो आती। ना, उसका कहीं कोई नहीं! इतनी बड़ी दुनिया में उसका कहीं ठिकाना नहीं! अपनी एक अदद सोने की चूड़ी देकर उसने कभी किसी भटके हुए राहगीर की मदद की थी। शायद वह भी अब किसी नयी नौकरी में मस्त हो गया।

वनलता ने खत लिखा—इस नौकरी में बिल्कुल फुर्सत नहीं मिलती। वक्त से अगर खत न दे पाऊं, तो परेशान न होना। नयी-नयी जगह है! खूब दूध पिया करो और उस देश में शुद्ध घी भी जरूर मिलता होगा, तुम अपने लिए घी का भी इंतजाम कर लेना। आजकल बाजार में ईलिश मछली आने लगी है… तुम्हारे बिना मन उदास रहता है…

हां, वनलता के खतों में छब्बीससाला उम्र की तमाम कम-

जोरिलों भी साफ जाहिर थी, लेकिन जब वह सीख देने पर उतर आती, तो ऐसा लगता मानो आमने-सामने खड़े होने के बजाय वह कहीं ऊंची जगह पर खड़ी है और अपने से नीची जमीन पर खड़े इंसान को निहार रही है।

सुधामय भी अपने खतों में लिखता रहा—सुनो, तुम्हारी सोने की चूड़ी बेचने की अब जरूरत नहीं रही, फिर भी मैं उसे हर वक्त अपने पास रखता हूं। लगता है, जैसे तुम भी मेरे बेहद करीब हो ''बिल्कुल दिल के करीब।

वनलता उन खतों को बार-बार पढ़ती, घुमा-फिराकर कई-कई अर्थ भी निकालती। कभी-कभी तो खाना बनाते हुए भी, उन खतों को खोल-खोलकर पढ़ती रहती। लेकिन ''उसने भी आने के लिए कहीं एक पंक्ति भी नहीं लिखी। मुमकिन है अभी तक वह ठीक तरह व्यवस्थित नहीं हो पाया हो, बुलाने से पहले वह चाहता होगा वह अपना घर अच्छी तरह सजा ले। सारा इंतजाम पक्का कर ले। वनलता भी, जैसे-तैसे या जहां-तहां तो नहीं जा सकती न! इधर वनलता खुद अपनी जुबान से कैसे कहे कि वह आ रही है?'' लेकिन, उसने भी तो आने को नहीं लिखा! काश, वह लिख देता—तुम चली आओ, वनलता! मैं तुम्हारे लिए घर सजाये बैठा हूं। अब छोड़ो अपनी नौकरी! मैं तो हूं ही! अब मैं तुम्हें नौकरी नहीं करने दूंगा।''

इधर वनलता आजकल [illegible] रहती, कहीं उसकी [illegible] नहीं [illegible]।

[illegible] हुई नहीं कि [illegible]। आजकल [illegible] नहीं, लेकिन, [illegible] नहीं। [illegible] हूं, तो मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता।

'बंगाल ! यह कौन-सी जगह है ?' शर्बती बाई ने पूछा।

'यहां से ब-हो-त दूर !' सुधामय ने समझाया।

उस दूरी का अंदाजा लगाते हुए शर्बती बाई की आंखें अचरज से फैल गयीं। दूर के आदमी से उसे बहुत डर लगता है ! शर्बती बाई की आंखों में भी डर की छाया उतर आयी।

…ना, राजा साहब ने कहीं कोई कसर नहीं उठा रखी। अजमेर, बीकानेर, जोधपुर, जयपुर से आने वाले नाते-रिश्तेदारों का तांता लग गया। अंदरमहल में मेहमानों की भीड़। राज-पुरोहित ने मंत्र पढ़कर उनका व्याह संपन्न किया। व्याह चाहे बंगाली रस्मों-रिवाज के अनुसार हो या राजपूती आन-बान-शान से, व्याह तो आखिर व्याह ही होता है न !

व्याह, प्रीतिभोज, सुहागरात—सभी कुछ राज्योचित !

राजा साहब ने सिर्फ एक बार पूछा था, 'अपने किसी नाते-रिश्तेदार को आमंत्रण नहीं भेजोगे ?'

लेकिन उसका इस दुनिया में आखिर है ही कौन, जिसे वह निमंत्रण भेजे ! जो लोग उसका व्याह कराते, वे सभी तो अभी जिंदा हैं, लेकिन सुधामय ने जब उनसे कभी कोई वास्ता नहीं रखा, तब अब जरूरत भी क्या है ! इसके अलावा राजा साहब अकेले ही सौ के बराबर हैं ! एक अकेले राजा साहब मौजूद हों, तो और किसी की मदद की जरूरत भी क्या है !

लेकिन शर्बती बाई ने सुहागरात के दिन ही उसे रोक दिया था—'ना, मुझे छूना मत !'

अभी तो शुरुआत है। शायद उसे शर्म आ रही होगी ! लेकिन वह औरत राजघराने के अंदरमहल में पली-बढ़ी बड़ी हुई। जवानी के तमाम खेल-खिलवाड़ उसे अंगुलियों के पोर पर याद होने चाहिए। तरुणाई कैसे दुनिया-भर को जीत लेती है, उसने अपनी आंखों से देखा होगा। मामूली किसान की बेटी

कैसे महारानी से भी ऊंचा पद हासिल कर लेती है, इसका भी उसे तजुर्बा होगा।

उन दिनों सुधामय काफी छोटा ही था, जब उसके बापू ने कहा, 'अब तुम कोई नौकरी-चाकरी ढूंढ़ लो। अब मैं तुम्हें और आगे नहीं पढ़ा सकता।'

उस दिन सुधामय ने हाल ही में आई० एस-सी० पास किया था। उसने साफ जवाब दे दिया, 'क्लर्की मेरे वश की बात नहीं।'

बापू ने एकदम से भड़ककर कहा, 'तब फिर तुम्हारे जो मन में आये, करो। लेकिन अब मुझमें तुम्हें और आगे पढ़ाने का बूता नहीं।'

उसने काकालोगों के दरबार में फरियाद की।

उन लोगों ने भी यही राय दी, 'भई, डाक्टरी पढ़ना कोई आसान बात नहीं! सिर्फ रुपये से ही तो काम नहीं चलने का, इसके लिए दिमाग भी चाहिए…'

हालांकि उसके बापू उसे डाक्टर नहीं देख पाये। मां भी बहुत पहले ही चल बसी, लेकिन कवता ने उसे डाक्टर बनते देखा था। उसके बाद ही तो उसके माथे पर कलंक का दाग लग गया…मारे शर्म के देश छोड़कर भाग आना पड़ा। अब बंगाल से उसका कोई संबंध ही नहीं रहा। सिर्फ वनलता से ही थोड़ा-बहुत संबंध बचा रहा है। लेकिन वह वनलता को भी यह खबर कैसे दे सकता है? अभी इतवार को ही वनलता का खत आया है। लिखा है—'नौकरी ने बेहद व्यस्त कर रखा है, बिल्—

फ़ुर्सत नहीं मिलती। सोचती हूं, किसी और अस्पताल में नौकरी ले लूं। यहां की मेट्रन मुझे फूटी आंखों नहीं सुहाती···'

रहने दो, वनलता को अब नौकरी में ही व्यस्त रहने दो ! और···सुधामय भी जहां है, वहीं पड़ा रहे। यहां शर्बती बाई है, राजा साहब हैं ! उसे डर किस बात का ?

सुधामय ने पूछा था, 'तुम्हें क्या मुझसे डर लगता है ?'

शर्बती बाई ने कोई जवाब नहीं दिया। बूटेदार गुलाबी घाघरा, वित्ते भर की इत्ती-सी कंचुकी और जाफरानी रंग की महीन ओढ़नी में उसने अपने को इतनी-इतनी खूबसूरत और आकर्षक बना रखा था, मानो छूने से भी मैली हो जायेगी।

लेकिन सच ही, शर्बती बाई अंत तक मैली नहीं हुई।

उसने सुधामय से सिर्फ इतना ही पूछा था, 'तुमने मुझसे व्याह क्यों किया, बाबू साहेब ?'

'क्यों ? तुम सुखी नहीं हो ?'

राजा साहब नहीं रहे ! तीनों रानियां विधवा हो गयीं ! रियासत की रंगत ही बदल गयी। डाक्टर का भी पहले जैसा रौब-दाब और दबदबा नहीं रहा, सिर्फ जागीर भर बच रही। खैर, वह तो खुद राजा साहब ही, उसे तीन हजारी से पचास हजारी बना गये थे, इसीलिए थोड़ा-बहुत रुतबा बचा-खुचा रहा।

गर्वतिया की हालत शोचनीय हो उठी। अब तो उसे हाथ भी नहीं लगाया जा सकता। सुधामय उसे इंजेक्शन पर इंजेक्शन दिये जाता है। उसकी आंखों से नींद उड़ चुकी है। हर वक्त भारी-भरकम किताबें खोले बैठा रहता। इतना लंबा-चौड़ा डाक्टरी शास्त्र है. इतनी-इतनी दवाइयां हैं। क्या इस रोग का कोई इलाज नहीं मिलेगा? क्या सच ही यह रोग कभी ठीक नहीं हो सकता? सुधामय होले-होले से शर्वती बाई के घावों पर मलहम लगाता। कहां उड़ गया शर्वती बाई का वह अनिंद्य रूप? अब तो वह इतनी लाचार हो गयी है कि उसका हाथ-मुंह भी दूसरे को धोना-पोंछना पड़ता है। गर्वती बाई बस, हर पल भयंकर दर्द से छटपटाती रहती।

कभी-कभी उसकी कातर आंखें सुधामय के चेहरे पर टिक जातीं, मानो सवाल कर रही हों, 'मुझसे तुमने व्याह क्यों किया, बाबू साहेब?'

लेकिन सुधामय अब किससे कैफियत मांगने जाये? जिससे जवाबतलब किया जा सकता था, अब वह इस दुनिया में नहीं रहा। लाल साहबों के षड्यंत्र के शिकार राजा साहब कत्ल कर दिये गये। अब सिर्फ उनकी प्रेतात्मा अंतःपुर के महल-कंगूरों, तालकटोरा के कोठरी-कुप्पियों, सुरंग की संकरी अली-गली-अलिंदों में मंडराती रहती है। उनकी प्यासी आत्मा राजमाता, महारानी, पर्दानशीनों, पासवानों के कमरों में निःशब्द हाहाकार करती हुई भटक रही है।

सुहागरात को उस निर्जन एकांत में गर्वती बाई का पागल कर देने वाला मादक रूप आंधी-तूफान की तरह एकबारगी ठहरा

उठा। सुधामय उस अनिंद्य सौंदर्य को जीने के लिए पागल हो उठा। जुआ खेलते समय वह इसी तरह होशोहवास खो बैठा था। बाहर रेगिस्तान पर बरसती हुई रात, मानो किसी जादू-मंतर से और ज्यादा नशीली हो उठी। राजा साहब के हुक्म पर वह कमरा सजावट से जगमगा उठा था। इत्र, गुलाब जल, फूल, पानी—कहीं कोई कमी नहीं। अंतःपुर की औरतें उत्सव का आखिरी समूह-गीत गाकर रुख्सत हो चुकी थीं। महल के बाहर उत्सव का शेषांश अभी जारी था, हवा में तैरते हुए मीठे गीत-स्वर अंदर कमरे तक सुनायी दे रहे थे।

शर्बती बाई चीख उठी, 'आपके पैर पड़ती हूं, बाबू साहेब! मुझे हाथ मत लगाइए!'

'...क्यों?'

ब्याह की पहली रात, किसी नववधू का ऐसा अजीबोगरीब व्यवहार आज तक किसी ने नहीं सुना।...लेकिन वह रात... बस, इसी तरह गुजर गयी। सारी रात दोनों चुपचाप बैठे रहे—एक पलंग के ऊपर और दूसरा पलंग के नीचे, जमीन पर! रात के ताजा खिले फूल, सुबह मुरझाकर बासी पड़ गये। इत्र और गुलाबजल की तीखी सुगंध भी रेगिस्तान की रेत में घुलमिल कर जाने कब हवा में उड़ गयी।

पौ फटते ही शर्बती बाई सुरंग की राह अंतःपुर में समा गयी और सुधामय सामने वाले दरवाजे से बाहर निकल आया।

जाने कितने-कितने सालों पहले का हादसा है! यह सुनी-सुनायी कहानी दुबारा याद भी नहीं आती, अगर आज तुम्हारा खत न मिला होता। वैसे असली कहानी उसी वनलता के इर्द-गिर्द ही

घूमती है, लेकिन, शर्वती बाई की कहानी के बिना वनलता की कहानी पूरी नहीं हो सकती।

सरला दी ने पूछा, 'यह स्वेटर किसके लिए बुन रही हो, वनलता दी?'

वनलता को सुधामय का नाम लेते हुए शर्म आयी। उसने कहा, 'कोई न कोई तो आयेगा ही, उसी को थमा दूंगी!'

सरला दी ने लंबी उसांस भरकर कहा, 'किसी को आना होता, तो अभी तक आ ही जाता, बहना! इधर हम सबकी उम्र तो हहराकर बढ़ती जा रही है · '

कभी-कभी सरला दीदी कहती, 'तुम राजपुताना जाने की बात कर रही थीं, जाओगी नहीं?'

वनलता ने कहा, 'अरे हट्ट! वो तो यूं ही कह दिया था!'

उसके बाद?

वनलता पूरा खत शुरू से आखिर तक पढ़ जाती। नहीं, कहीं भी यह नहीं लिखा होता—तुम नौकरी छोड़कर चली आओ! अब तुम्हें नौकरी करने की जरूरत नहीं! अच्छा, एक यही बात, वह साफ-साफ लिखता क्यों नहीं?

रात के निर्जन एकांत में शर्वती बाई से फिर मुलाकात हुई। कुल एक दिन में ही उसका चेहरा बेहद करुण हो उठा था। अब वह राजप्रासाद का अंतःपुर छोड़कर सुधामय की हवेली में रहने लगी थी। राजा साहब ने दोनों प्राणियों की एक विशाल आयल-पेंटिंग बनवा दी थी। वह पेंटिंग कमरे की दीवार पर टांग दी गयी थी। वाकई, शर्वती बाई बेहद खूबसूरत लग रही थी। लेकिन सुधामय ने महसूस किया, शर्वती बाई अपना चेहरा मानो जानबूझकर

घूंघट में छिपाये हुए है।

हाथ पकड़ते ही शर्वंती वाई ने पीछे हटते हुए कहा, 'मुझे तुम छूना मत, वावू साहेव !'

अपनी वीवी को भी वह नहीं छू सकता ? सुधामय को उसका यह अनुरोध वेहद अजीव लगा।

शर्वंती वाई ने वताया, 'नहीं ! मुझे वहुत भयंकर रोग है वावू साहेव !'

रोग ? सुधामय सचमुच दो कदम पीछे हट गया। लेकिन शर्वंती वाई अगर वीमार है, तो वह भी तो आखिर डाक्टर है ! ऐसी कौन-सी वीमारी है ? कैसा रोग है ? आजकल तो सभी वीमारियों की दवा है, इलाज भी है। वह उसे रोगमुक्त कर देगा। वीमारी से क्या डरना ? लेकिन, डाक्टर मरीज को हाथ न लगाये, यह कैसी वात ?

शर्वंती वाई ने कहा, 'मुझे छूने से मेरा रोग तुम्हें भी लग जायेगा, वावू साहेव !'

अव सुधामय ने सीधे-सीधे ही सवाल किया, 'ऐसा कौन-सा रोग है ?'

शर्वंती वाई ने जवाव दिया, 'तुम्हें नीचा दिखाने के लिए, उन लोगों ने मुझे तुम्हारे खेल की महफिल में भेजा था। वे लोग तुमसे वेहद नाराज हैं, वावू साहेव !'

'नाराज हैं ? भला क्यों ?'

'राजा साहेव जो तुम्हारी मुट्ठी में थे, इसीलिए…'

'अच्छा ? लेकिन उन लोगों ने मुझे नीचा कैसे दिखाया, जरा यह भी तो सुनूं !'

'तुमसे मेरा व्याह कराकर, उन्होंने तुम्हारी जिंदगी जो वर्वाद कर दी…'

'अरे भई, तुमसे व्याह करके, भला मेरी जिंदगी क्यों वर्वाद

होने लगी ?'

शर्वती बाई ने जवाब दिया, 'हां, बाबू साहेब, हो गयी ! मेरी जिंदगी तो खैर, बिल्कुल तबाह हो चुकी है।'

सारा किस्सा सुनकर सुधामय सन्न रह गया।

शर्वती बाई ने बताया, 'मुझ-जैसी ढेरों-ढेरों लड़कियां हैं, बाबू साहेब ! किसी को नीचा दिखाना हो या जड़ से मिटाना हो, हमारे जरिये उन्हें भरमाकर, उनकी जवानी तबाह कर दी जाती है...'

'और वे लड़कियां ?'

शर्वती के होंठों पर फीकी-सी हंसी खिंच गयी, 'वे लोग इसी अंदरमहल में एक दिन भयंकर दर्द से तड़पती हुई, कोढ़ से सड़कर मर जाती हैं।'

'राजा साहब ये सब बातें जानते हैं ?'

शर्वती बाई ने जवाब दिया, 'आलाहुजूर को सब बातों की जानकारी है, सिर्फ मेरे ही बारे में कुछ नहीं मालूम। यह भी खोजा दिलखुशा सिंह की करतूत है ! लाल साहेब की साजिश और बड़ी रानी चंद्रावती की सलाह से यह जाल रचा गया।'

...खैर, ये सब वर्षों पुरानी बातें हैं। अगले दिन बिल्कुल सुबह-सुबह ही वह राजा साहब से मुलाकात की अनुमति मांगने के लिए दरबार में गया था।

उनके गुलामों ने बताया, 'राजा साहब तो आज दरबार नहीं करेंगे, हुजूर !'

'क्यों ?'

'उनकी मर्जी !'

लेकिन राजा साहब अगले दिन भी नहीं आये। खबर उसके अगले दिन जारी की गयी। रेजिडेंट साहब तशरीफ लाये, कुछ दिन जांच-पड़ताल चली। अरावली की गिरी-कंदराओं से होकर ढेरों पानी गुजर गया।

थैली-थैली मोहरें, गड्डी-गड्डी रुपये, वेशुमार इनाम-अकराम अंधेरी सुरंग की राह पंख लगाकर उड़ते रहे। उस दिन समूची रियासत में तहलका मच गया था। जाने कितनी-कितनी अफवाहें उड़ीं। जाने कितनी-कितनी कहानियां बनीं। किसी ने कहा—जरूर यह लाल जी साहब की करतूर है!

किसी ने कहा—इसमें राना चंद्रावती की सलाह थी!

किसी का खयाल था—इसमें दिलखुशा सिंह का हाथ है!

रेजिडेंट साहब की रिपोर्ट पहुंची—नाहरगढ़ के शासक का हार्टफल हो गया।

शर्वंती वाई ने पूछा, "मेरे लिए आप इतनी तकलीफ क्यों उठा रहे हैं, वावू साहेब?'

अव शर्वंती वाई ज्यादा वात भी नहीं करती। वस, अपनी वड़ी-वड़ी आंखों से टुकुर-टुकुर ताकती रहती। कभी-कभी उसके होंठों की गुलावी पंखुरियां हल्के-से कांपकर रह जातीं।

'इस व्याह को व्याह नहीं कहते, वावू साहेव! आप मुझे भूल जाइए···'

उस वक्त सुधामय की निगाहें किसी खुली किताव पर गड़ी हुई थीं। आजकल वह दिन-रात किताबें पढ़ता रहता है और तरह-तरह के सवाल पूछता रहता।

उसने पूछा, 'तुम्हें भूख लगी है, शर्वंती वाई?'

किताब पढ़ते-पढ़ते उसके मन में फिर कोई संदेह जाग उठता। वह पूछता, 'देखो, मुझसे शरमाना नहीं, मैं डाक्टर हूं, जो-जो पूछूं, सच-सच जवाब देना…'

अद्भुत जिंदगी! ऐसी अद्भुत जिंदगी का परिचय उसे डाक्टरी किताबों में भी कभी नहीं मिला। जाने कहां-कहां से चुन-चुनकर लाई गयी लड़कियां! सब-की-सब गांव की भोली-भाली किशोरियां। शायद कोई कुएं पर पानी भरने आयी थी, उसके बाद उसका अता-पता ही नहीं चला। कोई बेमतलब ही एकदम से लापता। उसके बाद उन्हें दिलखुश सिंह के हाथों सौंप दिया जाता। उन लड़कियों में जो जरा ज्यादा खूबसूरत थी, उन्हें चुन लिया गया और उनकी देह में गुप्त रोग का जहर भर दिया गया। जब किसी को नीचा दिखाना होता या किसी की जिंदगी तबाह कर देने की जरूरत पड़ती, उन्हें ये लड़कियां एकाध रातों के लिए उपहार में भेज दी जाती। इतिहास-प्रसिद्ध विष-कन्या द्वारा दंशित दुश्मन तो तुरत मर जाता था, लेकिन इस विषकन्या को भोगने वाला तिल-तिल कर मरता। उसके बाद यंत्रणा। सिर्फ एक रात की फिसलन आदमी की जिंदगी भर के लिए तबाह कर देती। भयंकर यंत्रणा और तकलीफ से छटपटाता हुआ आखिर वह दम तोड़ देता।

सालों पुरानी बात है।

उस रात भी राजमहल के मुख्य द्वार पर प्रहरी उसी तरह खड़ा था। दिलखुश सिंह खुद हाथ में मशाल लिये दरवाजे पर आ खड़ा हुआ।

'जरा मुखड़ा तो देखूं…!'

रानी साहिबा ने कहा, 'हाय मां, कैसी ठंडी-ठंडी शर्बत जैसी सूरत है…'

यहां के राग-रंग देखकर मोहर बाई भौचक्की रह गयी। कहां आ गयी वह? राजा का महल दिखाने का लालच देकर, उन लोगों ने उसके बापू को सौ रुपये पकड़ाये और उसे खरीद लाये।

उन लोगों ने कहा था—'तुम्हारी बेटी सुख से रहेगी, भाई! अच्छा खाना-पीना मिलेगा, आराम से जिएगी। इसके बाद अगर कहीं राजा साहब की मेहरबान नजरों में पड़ गयी तो समझो, उसकी तकदीर खुल जायेगी!'

उसके बाद वे उसे बैलगाड़ी में बैठाकर ले आये, लेकिन यह कहां पहुंचा गये। वह तो मानो कोई परी-देश में आ पड़ी!

अचानक रानी साहिबा की आवाज सुनकर उसे होश आ गया।

बड़ी रानी ने कहा, 'ठंडी शर्बत-जैसी सूरत…इसे हमने शर्बती बाई नाम दिया।'

अब शर्बती बाई अंतःपुर मे इस महल से उस महल में घूमती-फिरती-खेलती नजर आने लगी। होली के दिन रंग खेलती, शादी-ब्याह में मिठाइयां खाती। दीवाली पर नये कपड़े पहनती, नौटंकी-ठेठर देखती। गाने सुनती, स्वांग देखती, तीज-त्योहारों के रस-रंग में शामिल होती। जैसे बाकी लड़कियां रहती थी, वह भी उसी रंग में रंग गयी।

उसके बाद एक दिन वह जवान हो गयी।

दिलखुश सिंह ने समझाया, 'शरवतिया जी, अब हुड़दंग मचाना छोड़ो, तुम अब जवान हो गयी हो।'

शायद यह जवानी ही उसके लिए काल बन गयी। उसके पांवों में जरीदार जूतियां पहना दी गयीं। सीने के उभारों पर

कंचुकी चढ़ायी गयी, माथे पर ओढ़नी का पल्ला लहराने लगा। बालों की लंबी वेणी, पांवों में पायजेब, कानों में झुमके, गले में हार – वह सिर से पांव तक लद गयी। इस राजघराने की यही रीत है। यह रीत अनादि काल से चली आ रही है। अब जो पर्दा-नशीन औरतें बन गयी हैं, वे भी इसी तरह कहीं-कहीं से उठा लायी गयी थीं। अब बाहरी दुनिया से उनके सारे नाते-रिश्ते खत्म हो चुके हैं। उन औरतों के लिए दुनिया में एकमात्र मर्द यही राजा साहब रह गये हैं। उनके अलावा और कहीं कोई मर्द नहीं! यानी इस दुनिया में राजा साहब ही एकमात्र नर, बाकी सब मादा! इतनी सारी अनगिनत औरतों का जीवन, यौवन, मान-सम्मान सारा कुछ एकमात्र उस पुरुष के दिलबहलाव के परवान चढ़ चुका है।

लेकिन अचानक शर्वती बाई की जिंदगी में अभिशाप की छाया मंडराने लगी।

होली का उत्सव। चारों तरफ झाड़-फानूस, फूल-पत्ते, लड्डू, मिठाइयों की भरमार। त्योहारी पर मिले हुए नये-नये कपड़े-जूती, ओढ़नी-घाघरा। लोग-बाग का आना भी शुरू हो गया। दूर बसे, खानदानी घरानों के अमीरों को दावत भेजी गयी है। खानदानी लोग अपने पूरे कुनबे, दास-दासियों, बहू-बहनों के साथ तशरीफ ले आये। लेकिन हर कोई शर्वती बाई को देख-कर अचकचा जाता।

सब एक-दूसरे से सवाल करतीं, 'वह कौन है, बहना?'

'शर्वती बाई!'

'सर्वनाश! रूप की ऐसी आग राजा साहब की निगाहों में नहीं पड़नी चाहिए! इस रूपमती को अगर यहां से हटाया नहीं गया, तो यह औरत सबकी इज्जत उतार लेगी।' बड़ी रानी चंद्रावती ने दिलखुश सिंह को चोरी-चोरी तलब किया। उनमें

क्या बातें हुईं, कोई नहीं जानता। किसी को कानोकान भनक नहीं लग पायी। लेकिन उसके बाद उस दिन के उत्सव में शर्वती बाई कहीं दिखायी नहीं दी। शर्वती बाई उस वक्त तालकटोरा के शाही अंधेरे कैदखाने में पथरायी हुई-सी चुपचाप बैठी थी···

जाने कितने साल गुजर गये! महल में इस काम के लिए और भी बहुत सारी औरतें तैनात हैं—मोतिया बाई, अख्तरी बाई, गुलब्बो बाई। ऐसी औरतें बहुत दिन नहीं जीतीं···फिर भी उन्हें जिलाए रखना पड़ता है। उन्हें खिलाना-पहनाना पड़ता है, उन्हें बेहतरीन साज-पोशाकें भी देते हैं। उसके बाद दिलखुश सिंह प्रकट होता है। अक्सर काफी रात गये, वह हाथ में मशाल लिये आता, दरवाजे का ताला खोल देता। उस झुटपुटे अंधेरे में कोई विकलांग मूरत टुप्प से अंदर दाखिल होती। आते ही सांप की तरह अपनी कुंडली में कस लेता। नशीली रात का रोमांच कटने में कुल पांच या सात सेकंड लगते। दिलखुश उसे निकालकर, दुबारा अपने साथ वापस ले जाता। उसके बाद, फिर वही हरकत! अगली रात फिर वही···उसके अगली रात भी वही··· यानी खून के कण-कण में जहर अच्छी तरह फैल जाये। अच्छी तरह हाड़-मांस-मज्जा में जड़ें जमा जाये। कहीं कोई कसर न रहे!

मोतिया बाई, अख्तरी बाई, गुलब्बो बाई—हर औरत की जिंदगी में इसी तरह का हादसा हो चुका है। शर्वती बाई की जिंदगी में भी यही हादसा दोहराया गया।

बड़े गाजी का महाजन खासा खानदानी अमीर है, लेकिन अंदर-ही-अंदर वह तरह-तरह के षड्यंत्र रच रहा है। रतनगढ़

कि नवाब के यहां जा-जाकर नाहरगढ़ के राजा साहब की निंदा करता है। जमींदारी में प्रजा लोगों पर अत्याचार करता है। उसे सबक देना होगा। रेजिडेंट साहब के दरबार में दरखास्त भेजकर अपील-अदालत तो खैर करेंगे ही, उस महाजन के बच्चे को सजा भी देना जरूरी है।···सेठ जी को दावत देकर बुलाया गया। जब रात गहरा आयी, तो गुलब्बो बाई को हाजिर किया गया। उस रात महाजन बाई के साथ हमबिस्तर हुए, उसकी बांहों में जिंदगी की घूंट चखकर मस्त हो गये। नतीजा यह हुआ कि गुलब्बो बाई की तमाम लालसा-कामना महाजन के हाड़-मांस-मज्जा के रेशे-रेशे में प्रतिहिंसा और प्रतिशोध बनकर हमेशा-हमेशा के लिए चिरस्थायी हो गयीं। उसके बाद हद-से-हद चार या पांच साल की जिंदगी! हां तो, राजा साहब के तमाम शत्रु इसी तरह सड़-गलकर निश्चिह्न हो जाते।

शर्बती बाई सिर्फ कातर निगाहों से उसे देखा करती और कमजोर-सी आवाज में बार-बार यही-वही सवाल दोहराती, 'मुझसे तुमने ब्याह क्यों किया, बाबू साहेब? हम लोग शादी के काबिल नहीं होतीं···'

···लेकिन इस बार बिल्कुल अलग मामला था। राजा साहब भी नहीं जानते थे। यह तो दिलखुशा सिंह, बड़ी रानी और लालजी साहब की साजिश थी। कहां का बंगाली डाक्टर! धूर्तता के बल-बूते पर तीन हजारी से, एकदम से पचास हजारी जागीर हथिया बैठा। राजा साहब का यह आलम कि अब वह उस कम्बख्त डाक्टर के कहने पर उठते-बैठते हैं। उसे सबक देना ही होगा! तहखाने में रोज जुए का अड्डा बैठता। अब राजा साहब जब पानी लाने के लिए ताली बजायें, पानी पेश करेगी—शबती बाई!

···दिलखुशा सिंह सुबह-सवेरे ही आकर्षक साज-पोशाकें दे

गया । झुनझुन, खुशबूदार तेल-फुलेल, पहुंची-कंगन-टिकुली ! आज खूब सज-संवरकर मोहिनी अप्सरा का रूप धारण करना होगा । जादू चलाना होगा, खेल का नशा तोड़ देना होगा । ना, कोई उज्र-आपत्ति नहीं मानी जायेगी । रियासत की भलाई के लिए स्वार्थ त्याग करना बहुत जरूरी है । ना, रोने का भी कोई असर नहीं होगा ।

शवंती बाई को सजा-संवारकर मोहिनी मूरत में बदल दिया गया और उसे बगल वाले कमरे में तैनात कर दिया गया ।

दिलखुशा सिंह ने समझाया था, 'राजा साहब जब तीन बार ताली बजायें तो समझना, पानी चाहिए; दो बार ताली बजायें तो अर्क और एक बार ताली बजे तो तमाखू ।'

राजा साहब ने तीन बार ताली बजायी…

सदानंद बाबू ने अपनी कहानी जारी रखी, उसके बाद फिर एक मर्तबा नाहरगढ जाने का मौका मिला था । उस बार भी वही… रसगुल्ला बनाने की फर्माइश । शवंती बाई के ब्याह के समय जो रसगुल्ले खिलाये गये थे, बेहद स्वादिष्ट लगे, इसीलिए फिर हुक्म हुआ । सो साहब, जाना ही पड़ा । उन दिनों दलजीत सिंह मरहूम हो चुके थे । राजमहल में खोजा दिलखुशा सिंह और बड़ी रानी का राज-प्रसार । राजगद्दी पर बड़े राजकुमार को बैठाया गया था । लेकिन अब उस बिचारे डाक्टर की पहले-जैसी शान-शौकत नहीं रही । इधर डाक्टर भी एक कांड कर बैठा । साहब, कांड था वह ! जिंदगी में ऐसा कांड न कभी किसी ने सुना !

मैंने पूछा, 'और वनलता ?'

'वनलता कौन ?' सदानंद बाबू के दिमाग से वनलता का ख्याल बिल्कुल ही उतर चुका था, 'हां'''एक महिला को देखा तो था'''

'''शर्वती बाई ने जिस दिन संसार से विदा ली, सुधामय उसका दाह-संस्कार करके, नदी तट से सीधे अपनी हवेली में चला आया। उस दिन जो अपने कमरे में घुसा, जिंदगी में फिर कभी बाहर नहीं निकला। कब सुबह हुई, कब शाम, कब सारा नाहरगढ़ नींद में बेहोश हुआ - अब उसे कोई खबर नहीं। हां, कभी-कभी किसी को उसकी झलक भर मिल जाती। रास्ते के किनारे-किनारे जाते लोगों की नजर अक्सर उसके कमरे की तरफ उठ जाती। डाक्टर अपने कमरे में बैठा-बैठा जाने क्या-क्या लिखने में डूबा होता। वह दिन-रात पन्ने-पर-पन्ने रंगता रहता।

लोग बीमार पड़े हैं, दवा मांगने आये हैं।

उन्होंने नौकर से पूछा है, 'डांग्दर साब घर में हैं ?'

'नहीं ! साहब ने डाक्टरी छोड़ दी है !' जवाब मिलता।

पढ़ते-पढ़ते काफी रात गुजर गयी। अचानक उसकी निगाहें एक पन्ने पर बिल्कुल थिर हो गयीं, मानो वह किसी गहरे ध्यान में डूब गया हो।'''शर्वती बाई ने दर्द से तड़पते हुए दम तोड़ दिया। डाक्टर की दवा भी उसे नहीं बचा पायी। डाक्टरी विद्या किसी काम नहीं आयी। दुनिया की कोई दवा उसका रोग नहीं दूर कर पायी।

कभी-कभी वह शर्वती बाई के सिरहाने बैठा-बैठा, बड़े गौर से सिर्फ देखता रहता।

उसकी तरफ गहरी निगाहों से देखते हुए सिर्फ इतना भर पूछता, 'आज कैसी हो ?'

इन दिनों शर्वती बाई की बातें सिर्फ उसकी आंखों में सिमटकर रह गयी हैं। आखिरी दिनों में वह बोलने की ताकत भी खो बैठी थी।

उसकी आंखों में फिर-फिर वही कातर सवाल, 'तुमने मुझसे ब्याह क्यों किया था, डाक्टर साहेब ?'

सुधामय ने तसल्ली देते हुए कहा, 'मैं तुम्हें एक और इंजेक्शन दे रहा हूं। बताना, इसके बाद कैसा लगता है ?'

कलकत्ता। बम्बई। एक-से-एक नयी दवा मंगाकर, वह शर्वती बाई का देता रहा। नयी-नयी किताबें खरीदता, पढ़-पढ़कर ढेर लगाता जा रहा था। रेगिस्तान की धरती में मानो यह कोई विचित्र रोग है। इससे पहले इस रोग के बारे में कभी किसी ने जिक्र नहीं किया।

शर्वती बाई की देह अब धीरे-धीरे झर-झरकर बिखरने लगी है। सबसे पहले आवाज बंद हुई, उसके बाद आंखों की रोशनी जाती रही। भीषण दर्द और तकलीफ से छटपटाती हुई शर्वती बाई। उसकी हालत अब देखी नहीं जाती। लेकिन, वह शर्वती बाई की लाचार देह अपनी बांहों में लेकर, हौले-हौले उसके घावों को धोता-पोंछता। उफ ! समूची देह में कैसी भयंकर दुर्गंध ! जो औरत कभी अनिंद्य सुंदरी थी, जिसका सौंदर्य देखकर सुधामय कभी अपनी सुध-बुध खो बैठा था अब वह सारा कुछ व्यतीत बन चुका है। कुछेक महीने उसकी हालत में खासा सुधार भी नजर आया, लेकिन कुछ दिनों बाद, रोग दुबारा उभर आया। कुछ दिनों बाद वह फिर ठीक होने लगी··· लेकिन फिर-फिर उसी रोग के हमले···

···उस दिन समूचे घर में अजीब-सा सन्नाटा छाया हुआ था !

चारों तरफ मातमी खामोशी ! सिर्फ पश्चिम में खड़े खजूर के दरख्त से टकराती हुई हवाओं में पत्तों की खड़खड़ाहट भर मुखर थी। आकाश में भटकते हुए किसी अकेले खामोश पंछी ने हठात् अपने पंख फड़फड़ाये और उल्टी दिशा में उड़ चला। शर्वती बाई जिस कमरे में लेटी रहती थी, आज वह खाली पड़ा था। लेकिन सुधामय की अपलक निगाहें उस खाली जगह को अगोरती रहीं। उसे लगा, पास ही कोई सिसकियां भर रहा है। बिल्कुल वही आवाज--'तुमने मुझसे ब्याह क्यों किया, बाबू साहेब ?' अस्फुट आवाज धीरे-धीरे फिर कहीं दूर जा मिली। समूचा नाहगरढ़ मानो पत्थर हो आया हो···

झील के किनारे वाले बंगले में कोई नये रेजिडेंट साहब आये हैं। नये साहब ! राजप्रासाद से उनके लिए नजराने भेजे गये। राजा साहब भी नये-नये, रजिडेंट साहब भी नये-नये ! लेकिन बड़ी रानी अब भी जिंदा है, खोजा दिलखुश सिंह भी मौजूद है। राजप्रासाद में पलते हुए षड्यंत्र और उन्हें साहब की नजरों से बचाये रखने की वही-वही कोशिशें। शर्वती बाई नहीं रही, मुमकिन है मोतिया बाई, अख्तरी बाई और गुलब्बो बाई भी संसार से विदा हो चुकी हों।

सुधामय किताब पढ़ते-पढ़ते अचानक उठ खड़ा हुआ। इधर कई दिनों से उसने हजामत नहीं बनायी। कमरे में टिमटिमाता हुआ दीपक। वह आइने के सामने जा खड़ा हुआ। आइने में घूरता हुआ कोई वीभत्स चेहरा। शर्वती बाई की अदृश्य छाया मानो फिर-फिर वही सवाल दुहराती हुई—'तुमने मुझसे ब्याह क्यों किया, बाबू साहेब ?'

इस 'क्यों' का उत्तर अधूरा ही रह गया। सुधामय कभी जवाब नहीं दे पाया। उस वक्त. शर्वती बाई की समूची देह पंगु हो चुकी थी। न वह बोल पाती, न किसी को पहचान पाती। चेहरा-नाक-कान सारा कुछ बेजान-निश्चल। कहां गया वह रूप? कहां गयी शर्वती बाई? रात के घुप्प अंधेरे में शर्वती बाई का विकृत, बदसूरत चेहरा आंखों के आगे तैर जाता। सिर्फ दीवार की आयल-पेंटिंग निर्वाक् आंखों से उसे देखती रहती।

··उस दिन भोर फूटते ही डाक्टर ने माधोलाल को बुलाकर आदेश दिया, 'आज से जो कोई भी आये, कहना मुलाकात नही होगी।'

'अगर राजा साहब इत्तला भेजें ?'

'तब भी नही···'

'अगर रानी साहिबा तलब फरमाएं ?'

'तब भी नहीं···'

'अगर···'

'ना, कोई नही !' अब सुधामय का कही कोई नही। शर्वती बाई के अलावा इहलोक-परलोक में उसका कही कोई अपना नही।

तैंतीस मील लंबा रास्ता। बैलगाडी झकोले देती हुई चलती रही। जब चला था, रात कुछ-कुछ बाकी थी। जंगली कांटों के झोंप-झाड भरी पगडंडी से गुजरकर, अब हमने कच्ची सड़क पकड ली। धूपछांही दिन ! हिंद महासागर के किनारे-किनारे, नमक की ढेरियां सहेजे हुए नहर-दरिया का पानी धूप की रोशनी में चमक रहा था। पंडा ईश्वरीप्रसाद एक-पर-एक

कहानियां सुनाये जा रहा था।

यह सब, जाने कितने सालों पुरानी बात है। अब तो ठीक-ठीक याद भी नहीं !

...आज तुम्हारे खत का जवाब देते हुए सारा कुछ दुबारा याद करने की कोशिश कर रहा हूं, सुचेता ! अजमेर के सदानंद बाबू से सुधामय की पूरी कहानी नहीं सुन पाया। उन्हें पूरी कहानी शायद मालूम भी नहीं थी। रसगुल्ले का बयाना पाकर जब वह नाहरगढ़ गये थे, तब डाक्टर को जैसा देखा था, मेरे सामने ज्यों-का-त्यों बयान कर दिया।

इस कहानी का शुरू का हिस्सा कलकत्ते में टुकू मौसी ने सुनाया था। उसके बाद कुछ हिस्सा अजमेर में सुना। टुकड़ों-टुकड़ों में सुनी घटनाओं से एक आधी-अधूरी-सी कहानी भर बन पायी। आज उसका आखिरी हिस्सा सुन रहा था—वनलता राय से, उसके वनलता मित्र बनने की कहानी !

ईश्वरीप्रसाद ने ही बताया, 'पैसे तो डाक्टर-मां लेती नहीं, डाक्टर-मां के अस्पताल में किसी को भी पैसे नहीं देने पड़ते।'

हालांकि यही वनलता कभी पैसे-पैसे के लिए किस कदर मोहताज थी !

...सरला दी ने पूछा था, 'सारी खरीद-फरोख्त हो गयी, वनलता दी ?'

'अब तो पैसे ही नहीं बचे, बहना !'

'अच्छा, सुनो, पहुंच का खत जरूर डाल देना।'

लेकिन सरला दी के जाते ही उसे फिर कुछ याद आ गया। सुधामय के लिए उसने धोती खरीदी है। दीवाली वाले दिन ही वह नाहरगढ़ पहुंच जायेगी। रेल के किराये के अलावा, अब उसके पास फूटी कौड़ी भी नहीं बची। अचानक उसे कुछ याद आ गया। वह दुबारा बाजार चल पड़ी।

वनलता ने पूछा, 'क्यों ? मुलाकात क्यों नहीं होगी ?'

'डांग्दर बाबू का हुकुम !'

वनलता ने कहा, 'तुम जाकर कहो, मुलाकात किये बिना यहां से नहीं टलूंगी ! मैं बहुत दूर से आ रही हूं, कलकत्ते से !'

माधोलाल ने फिर कहा, 'डांग्दर बाबू किसी से नहीं मिलते, हुजूर ! सिर्फ दवाई खाते हैं और लिखते रहते हैं…'

'क्या लिखते रहते हैं ?'

'अरे, लिख-लिखकर कापियां रंगते रहते हैं ! समूचे घर में कापियों का पहाड़ जम गया है…'

·

ईश्वरीप्रसाद के साथ जिस दिन डाक्टर-मां के अस्पताल पहुंचा, उस दिन वनलता मित्र ने मुझे वे कापियां भी दिखायी थीं। उस दिन वनलता मित्र को भी मैं सालों बाद देख रहा था। सिर के सारे बाल आज सफेद हो चुके हैं। कोरी साड़ी, सफेद ब्लाउज। अस्पताल के तमाम रोगियों पर उसकी चौकन्नी नजर ! सारे मरीज वनलता को डाक्टर-मां कहकर बुलाते हैं…दूर धूप की किरणों में चमकता हुआ सागर-जल। वनलता के ड्राइंग-रूम से नजर आता हुआ सागर-जल और डाक्टर-मां के चेहरे में कहीं कोई अद्भुत समानता थी। उसका चेहरा भी सागर की तरह ही विराट, प्रशांत और प्रशस्त !

वनलता बताने लगी, 'डाक्टर मित्र अपना सारा तजुर्बा इन कापियों में लिख गये हैं। इस रोग के बारे में पहले दिन से लेकर अंत तक की छोटी-से-छोटी बातें, स्थितियां, प्रतिक्रियाएं—सब इन कापियों में दर्ज हैं। मैंने उन कापियों की प्रतियां बनवाकर जर्मनी भेजी हैं। उन लोगों ने खत लिखकर सूचित किया है कि

इन कापियों के जरिये बहुत सारे नये-नये तथ्यों का आविष्कार हुआ है। देखिए न, यह रहा वह खत…'

इस बीच हमारा नाश्ता भी आ गया। मैंने गौर किया, इतने दिनों बाद वनलता जिंदगी में कहीं बेहद स्थिर हो आयी है। इतने दिनों मानो मन की समूची एकाग्रता के साथ तप और साधना की राह इसी परिपूर्णता की ओर अग्रसर थी, मानो उसके जीवन का यही परम और एकमात्र लक्ष्य हो। अब उसके हाव-भाव या दृष्टि में शुरू दिनों के उस नशीले आवेग का कहीं नामोनिशान तक नहीं रहा।

जिस दिन वह पहले-पहल नाहरगढ़ में दाखिल हुई, उस दिन भी उसका चित्त कहीं से अस्थिर था।

उसे देखकर सुधामय ने कहा था, 'तुम क्यों आयी, वनलता?'

वनलता ने जवाब दिया, 'मुझसे बहुत देर हो गयी, जी। अब मैं और इंतजार नहीं कर सकी! तुम्हारे बुलाने के इंतजार में रुके रहना मेरे लिए असहनीय हो उठा था!'

'लेकिन मैं तो…'

वनलता ने उसे बीच में ही रोक दिया, "ना, अब मैं तुम्हारी एक भी बात नहीं सुनूंगी। कलकत्ते से आते वक्त मैं अपने साथ सिंदूर भी लेती आयी हूं…' सुधामय कोई आपत्ति करे, इससे पहले ही वनलता ने उसका हाथ कसकर थाम लिया।

सुधामय ने एक बार कहना भी चाहा, 'मुझे मत छुओ, वनलता!'

लेकिन इससे पहले ही वनलता ने सुधामय के हाथों में चुटकी भर सिंदूर लगाकर उसे जबरन अपनी मांग में रगड़ लिया। उसके बाद, उसका पैर छूकर माथे से लगाते हुए कहा, 'सुनो, आज तुमसे जबरन अपनी मांग में सिंदूर लगवाते हुए भी मुझे कहीं से भी शर्म-लाज नहीं आ रही। ना, अब शरमाने का वक्त

नहीं रहा…'

सुधामय की अंगुलियां अब धीरे-धीरे झरने लगी थीं। समूची देह में घाव, घावों से रिसता हुआ मवाद। अब वह आंखों से ठीक तरह देख भी नहीं पाता। कुछ दिनों बाद शायद कान भी जवाब दे जायें!

…लेकिन उस दिन सुधामय की पलकों की कोरों में हंसी की महीन-सी रेखा खिल उठी।

उसने सिर्फ इतना ही पूछा, 'तुम इतनी देर से क्यों आयीं, वनलता ?'

वनलता ने सुधामय का हाथ अपने हाथों में लेते हुए कहा, 'हां, देर हो गयी, लेकिन आयी तो सही! वो तो कहो, तकदीर अच्छी थी, जो और ज्यादा देर नहीं की!'

'लेकिन, सुनो, उस चुटकी-भर सिंदूर के अलावा हममें-तुममें और कोई नाता नहीं होगा…'

'कौन कहता है, नहीं होगा?'

'नहीं, सच! और कोई नाता नहीं होगा, वरना इतने दिनों की मेरी सारी तपस्या झूठी पड़ जायेगी। शवंती बाई जिस भयंकर कष्ट में तड़प-तड़प कर मरी, मैं खुद भी वे तमाम तकलीफें झेलते हुए मरना चाहता हूं। हां, अगर हो सके तो मेरे ये सारे लेख देश-विदेश, कहीं भी भेज देना। मुमकिन है, वे लोग अब किसी और शवंती बाई को ऐसी भयंकर मौत मरने से बचा लें!'

ईश्वरीप्रसाद ने अपनी कहानी उसी तरह जारी रखी, 'उसके बाद डाक्टर-मां ने पचास हजारी जागीर बेचकर, यहां अस्पताल खोल लिया। पारा-रोग के शिकार जितने मरीज आते हैं, बिना किसी खर्च-पानी के, डाक्टर-मां खुद उनके इलाज का गुप्त प्रबंध करती हैं। वैसे यहां और डाक्टर भी हैं। वे खुद भी

तो इस विद्या के कुशल जानकार हैं। जैसे उन्होंने सुधामय की मौत के आखिरी दिनों तक जी-जान से सेवा की थी, उसी तरह अब वे यहां के मरीजों की सेवा में दिन-रात जुटी रहती हैं। बंगाल का ख्याल अब वह जैसे भूल ही गयी हैं ! अब तो यह राजपूताना ही डाक्टर-मां का अपना देश बन चुका है।'

मैंने ईश्वरीप्रसाद से सवाल किया, 'लेकिन शर्वती बाई का रोग डाक्टर को कैसे लग गया ?'

'उस डाक्टर ने जान-बूझकर वे इंजेक्शन अपनी देह में भी चुभो लिये थे।'

'कैसे इंजेक्शन ?'

'अरे, उसी पारा-रोग के !'

आज जो तुम्हें यह खत लिख रहा हूं, पता नहीं, तुम्हें इसमें अपने भावी जीवन की परिणति का आभास मिलेगा या नहीं। लेकिन एक बात मैं खुद भी आज तक नहीं समझ पाया, आज इतने दिनों बाद मुझे याद आ रहा है : उस दिन बैलगाड़ी पर सवार होकर जब हम ओखा-पोर्ट से चले थे, जब कंटीले झोंप-झाड़ पार करके, कच्ची सड़क से गुजरते हुए मैंने ईश्वरीप्रसाद से यह कहानी सुनी थी, तब खुद अपने मन से ही यह सवाल पूछा था—'सुधामय ने शर्वती बाई के रोग का इंजेक्शन अपनी देह में क्यों लिया ?' दुनिया से 'सिफलिस' नामक रोग मिटाने की साधना के लिए ? या शर्वती बाई का सारा रोग-शोक अपने शरीर में चुनकर, किसी स्वस्थ, खूबसूरत शर्वती बाई को पाने के लिए ? खैर, छोड़ो ! अब सवाल यह है कि मैंने यह कहानी आखिर किसके बारे में लिखी है, मेरे लिए यह बताना भी शायद

आज मुश्किल है…

आखिर इसकी नायिका कौन है ? शर्वती बाई या वनलता? खैर, पाठक चाहे जो सोचें, तुम्हें भी क्या इस बारे में कोई संशय है ?

वैसे यह कहानी अगर यहीं खत्म हो जाती, तो शायद बेहतर था ! लेकिन, तब शायद यह मेरी कहानी नहीं होती। उस दिन आते समय वनलता ने कहा, 'आप लोगों को एक चीज और दिखाना बाकी है। चलिए, दिखाऊं…'

वनलता हमें बगल वाले कमरे में ले गयी । ईश्वरीप्रसाद उस वक्त समुंदर-किनारे हाथ-मुंह धोने चला गया था। यह कमरा और ज्यादा प्रशस्त और सजा हुआ था। चारों तरफ करीने से सामान लगा हुआ था।

वनलता ने कहा 'यह देखिए, यहां डाक्टर मित्र की सारी चीजें सजा कर रखी हुई हैं। ये रहे उनके जूते, ये कपड़े, यह कुरता—उनका सारा कुछ यहां संजोया हुआ है। उनकी कंघी, चश्मा, नकली दांत तक सहेजकर रख छोड़े हैं मैंने ! और यह रही—डाक्टर मित्र की तस्वीर…'

मेरी निगाह दीवार पर टंगी हुई आदमकद पेंटिंग पर जा पड़ी। सुनहरे फ्रेम में सजी-सजायी तस्वीर। एक तरफ डाक्टर सुधामय—सिर पर पगड़ी, दूल्हे के वेश में ! और उनकी बगल में शर्वती बाई—जाफरानी ओढ़नी, गुलाबी घाघरा ! राजपुतानी दुल्हन का वेश ! सदानंद बाबू ने भी तो इसी तस्वीर का जिक्र किया था। यह तस्वीर नाहरगढ़ के राजा साहब ने उनके ब्याह के मौके पर तैयार करायी थी।

कुछ देर को मेरी निगाहें उस तस्वीर पर स्थिर हो गयीं।

वनलता ने पूछा, 'मुझे पहचान रहे हैं ?' मैं अचकचा गया।

वनलता ने कहा, 'डाक्टर मित्र की बगल में···यह मैं ही तो खड़ी हूं !'

'अरे ! आप तो बिल्कुल पहचानी ही नहीं जातीं !'

वनलता ने आहिस्ते से कहा, 'उन दिनों मेरी उम्र भी तो कम थी। उस उम्र में चेहरा भी खूबसूरत लगता था, काफी गोरी भी थी ! राजा साहब को बेहद चाव उमड़ा, मैं राजपूत औरतों की वेश-भूषा में तस्वीर उतरवाऊं ! असल में खुद राजा साहब ने ही तो खड़े होकर हमारा ब्याह कराया था···'

मेरे गले तक एक सवाल उभरा। हठात् यह पूछने का मन हो आया, 'आप शर्वती बाई को पहचानती हैं ?'

मेरे चेहरे-मोहरे का भाव देखकर शायद उसे भी संदेह हो गया।

उसने बेहद भरोसेदार लहजे में बातों की अगली कड़ी जोड़ी, 'इसके अलावा, उन दिनों, हम दोनों की उम्र भी तो बहुत कम थी···'

उसकी तीखी निगाहें मेरे चेहरे पर पड़ गयीं, मानो वह मुझे अंदर तक पढ़ लेना चाहती हो। लेकिन अगले ही पल उसने अपने को संभाल लिया।

मैंने पूछा, 'क्या उम्र थी ?'

'उनकी उम्र कुल छब्बीस साल थी, और मेरी तेईस···'


एक
राजा की
छः
रानियां

सोचा था, इस कहानी का नाम दूंगा—'एक तन, छः दुश्मन', लेकिन काफी सोच-विचार के बाद, मुझे लगा, दुश्मन और रानी—ये दोनों एक जैसे हैं! दोनों का आकर्षण भी एक जैसा ही है। खास कर रायगढ के ठाकुर साहब की छोटी रानी का आकर्षण। छोटी रानी के खत ने दामोदर पांडे को क्या कम आकर्षित किया था?

लेकिन शुरू में ही कहानी का अंत क्यों बताऊं?

बाद एक जाने कितने-कितने हादसे झेल चुकी है। किसी-किसी हादसे ने मुझे बिलकुल मटियामेट भी कर दिया है, लेकिन थोड़ा वक्त गुजर जाने पर मैं दुबारा उसी दम-खम से उठ खड़ा हुआ हूं! और संपत्ति ? संपत्ति मुझे सच ही, सहज सुलभ है! हां, चूंकि मैं सहज ही सुखी हो लेता हूं, इसलिए हर पल अमीर हूं। परम दुःख के पलों में भी मुझे सुख की बूंद का अहसास हुआ है, क्षति और क्षय में भी चरम तसल्ली और ताकत महसूस की है, यही मेरी सबसे बड़ी दौलत है। जिंदगी में इससे बड़ी दौलत और कौन-सी है ?

पुष्कर के दामोदर पांडे ने बताया था, 'भोजन के माध्यम से मैं परमेश्वर की पूजा करता हूं, बाबू साहब ! आप लोग तीर्थ करते हैं, ढेरों रुपये खर्च करके देश-भ्रमण करते हैं, पुण्य कमाते हैं, लेकिन मैं भोजन करके ही पुण्य कमाता हूं! उस ऊपरवाले परमपिता परमेश्वर के नाम पर भोग लगाता हूं ! अपनी आत्मा तुष्ट रहे, तो परमेश्वर भी परम तुष्ट होगा···'

खैर, मैंने अजमेर, द्वारका, पुष्कर, प्रयाग, मथुरा, वृंदावन जाकर कौन-कौन-सा पुण्य अर्जित किया, उसका हिसाब-किताब शायद उस ऊपरवाले के खाते में दर्ज हो रहा होगा ! वह मेरी समूची जिंदगी का लेखा-जोखा होगा। कोई पुण्य-फल मिला तो सार्थक हो जाऊंगा; नहीं मिला तो भी कोई शिकायत नहीं होगी। लेकिन तीर्थ-यात्रा के दौरान घाट-बाट, रेल-तांगा, वेटिंग-रूम वगैरह में मौजूद अख्यात, अज्ञात, अनादृत लोग ! उनके दर्शनों से भी पुण्य मिलता है, यह बात आज मैं निःसंकोच कह सकता हूं। इन्हीं लोगों के दम पर तो मेरी कला-कारीगरी है; ये लोग ही मेरी सृष्टि की पूंजी हैं।

मैं दरगाह शरीफ पर मत्था टेक आया, पृथ्वीराज का ढाई दिन का झोंपड़ा भी देख लिया, तारागढ़, अजायबघर, दौलत-

बाग, अन्नासागर—सारा कुछ देख डाला। अब कहीं कुछ भी देखना बाकी नहीं रहा। मेरा ख्याल था, मैंने सारा कुछ देख डाला। लेकिन रवाना होने के समय ही बाधा पड़ी।

पंडा महाराज यानी डी० एन० काले साहब ने पूछा, 'तीर्थ-स्थान में आकर आपने ब्राह्मण-भोजन नहीं कराया, बाबू जी?'

वाकई, यह सोचने की बात थी। पूरे अनुष्ठान में मैंने कहीं कोई त्रुटि नहीं रखी। पुष्कर में प्रसाद-पूजा चढ़ाया, सावित्री पहाड़ पर देवी-दर्शन भी कर आया, कछुओं को चने खिलाये, देर-देर तक व्रत करके दान-ध्यान-पूजा, गोदान, पकवान-चढ़ावे —सारे अनुष्ठान ही पूरे किये। चूंकि काफी देर हो गयी थी, इसलिए ब्राह्मण-भोजन नहीं करा पाया। मैंने सोचा, बाद में रुपये टिका देने से ही काम पूरा हो जायेगा, या फिर अजमेर वापस लौटकर कोई इंतजाम किया जायेगा। ब्राह्मण तो आखिर वहां भी होंगे। लेकिन वहां भी यह संभव नहीं हो पाया।

पंडा महाराज की बात सुनकर मैं फिक्र में पड़ गया। मैंने पूछा, 'कितना खर्च पड़ेगा?'

डी० एन० काले ने कहा, 'पांच ब्राह्मणों को भोजन कराने में आपको…'

उपाध्याय इतनी देर से हमारी बातचीत चुपचाप सुन रहा था।

अब उसने जुबान खोली, 'पांच क्यों? सिर्फ एक ब्राह्मण को खिला-पिला देना ही काफी होगा।'

पंडा महाराज के चले जाने के बाद उपाध्याय ने कहा, 'सुनिए, इन सब पंडित-पंडों की बातों में मत आइए। जाने कहां-कहां के आलतू-फालतू ब्राह्मण लाकर हाजिर करेगा और बीच में मोटा कमीशन मारेगा! आप ब्राह्मण को जो दक्षिणा देंगे, वह भी आधी से ज्यादा हड़प लेगा। इससे तो बेहतर है, ..

दामोदर पांडे को भेज दूंगा ! विशुद्ध भोजपुरी ब्राह्मण ! शरीफ और सदाचारी। पांच ब्राह्मणों का खाना वह अकेला ही खा लेगा ! सो, एक जन को खिलाकर पांच ब्राह्मण-भोजन का लाभ बिलकुल पक्का।'

मैंने कहा, 'तो फिर यही इंतजाम कर दीजिए।'

मामूली-सी बात थी ! एक ब्राह्मण को खाना खिलाना है। इसमें परेशानी जैसी कोई बात नहीं थी। पुरी, अयोध्या, वृंदावन, प्रयागधाम—हर जगह यह आयोजन निभा चुका था। सारी जिम्मेदारी पंडों ने ही अपने कंधों पर ले ली, मैंने सिर्फ रुपये गिनकर ही छुट्टी पा ली थी। लेकिन अजमेर में पहली बार मुझे कहानी भी मिली। हां, इससे पहले कभी किसी पेटू पंडित के जीवन-चरित्र की तरफ ध्यान नहीं गया था। शायद अजमेर में भी इसकी जरूरत नहीं पड़ती, क्योंकि तय यही हुआ था कि इसकी सारी जिम्मेदारी उपाध्याय के सिर पर होगी।

अगले दिन सुबह जब सोकर उठा तो सिंहद्वार की बगल में लोहे की बेंच पर पूरी बांह की बनियान पहने किसी अजनबी पर नजर पड़ गयी।

मुझे देखते ही वह उठकर खड़ा हो गया और उसने विनम्र लहजे में कहा, 'भोजन कराने के लिए आपने किसी ब्राह्मण को भेजने को कहा था, बाबू जी ? मैं दामोदर हूं—भोजन करता हूं।'

मैं इस स्थिति के लिए कतई तैयार नहीं था।

लेकिन पांडे जी ने खुद ही बातों की पहल की, 'आप मेरा जनेऊ देख लीजिए, बाबू जी, मैं विशुद्ध कन्नौजिया ब्राह्मण हूं। चूंकि मैं यहां के पंडों को कमीशन नहीं देता, इसलिए उन लोगों ने मुझे बर्बाद कर डाला है। लेकिन यहां जो बंगाली तीर्थयात्री आते हैं, वे मुझे ही भोजन कराते हैं। उपाध्याय जी को सारा

किस्सा मालूम है।'

'आप यहां करते क्या हैं ?'

पांडे जी को मेरा सवाल समझ में नहीं आया। वे भौचक्की आंखों से मुझे इधर-उधर ताकते रहे।

मैंने अपना सवाल स्पष्ट करते हुए कहा, 'आप यहां कोई नौकरी-चाकरी या किसी और काम में भी लगे हैं या सिर्फ ब्राह्मण-भोजन ही करते हैं ? मेरा मतलब है, आप करते क्या हैं ?'

पांडे जी ने सिर हिलाकर कहा, 'नहीं बाबू जी, और कुछ नहीं करता, सिर्फ भोजन करता हूं। पुष्कर जी की किरपा से भोजन ही मेरा पेशा है।' दामोदर पांडे का चेहरा मानो अपने पेशे के गर्वबोध से चमक उठा।

उसने दुबारा कहा, 'आप नंदकिशोर जी को पहचानते हैं ? कलकत्ते के नंदकिशोर बाबू ?'

मैंने इंकार की मुद्रा में सिर हिलाया।

पांडे ने कहा, 'अरे, वो तो कलकत्ते के इत्ते बड़े सेठ साहब हैं। आप उन्हें नहीं पहचानते ? बड़े बाजार में उनकी गद्दी है। यहां आये, तो मुझे भोजन करा गये। उनकी अउरत बड़ी भक्तिन है, बाबू जी ! पूरे पांच सेर दही, आधा मन आटे की पूड़ियां, लड्डू, दही-बड़े—मेरा भोजन देखकर खूब तारीफ की ! अंत में पूरे दस रुपइये दक्षिणा में दिये…'

पांडे जी शायद और लंबी फेहरिस्त गिनाते, लेकिन मैंने उनकी बात बीच में ही काटते हुए कहा, 'अच्छा ! अच्छा ! उपाध्याय जी को आ लेने दीजिए। मैंने उनसे सारा इंतजाम करने को कह दिया है।'

रात को उपाध्याय जी ने पूछा, 'सुबह पांडे आया था ?'

धर्मशाला के प्रबंधक उपाध्याय जी उस वक्त खटिया बिछा-

कर सोने की तैयारी में थे।

उन्होंने दुबारा कहा, 'तब मैं कल ही सारा इंतजाम किये देता हूं। क्यों, ठीक है न ?'

मैंने कहा, 'कल शाम को तो मैं चित्तौड़ चला जाऊंगा।'

उपाध्याय ने कहा, 'अरे, तो गाड़ी तो रात की है! सुबह ही खिला देंगे। अगर आप ग्यारह बजे खाने को बुलायें तो दो बजे तक वह पत्तल चाट-पोटकर बिलकुल साफ कर देगा! आप खुद ही देख लीजिएगा। वैसे मैंने उससे कह दिया है कि आज दिन भर वह उपवास रखे।'

मैं अवाक् रह गया, 'उपवास? कल खायेगा, इसके लिए आज से उपवास ?'

'जी, उपवास नहीं करेगा, तो कल पांच ब्राह्मणों का खाना अकेला खायेगा कैसे ? आखिर आदमी का ही पेट है! हर दिन क्या एक जैसी भूख रहती है? इसके अलावा, आजकल तो खाने की हर चीज में मिलावट रहती है! इसी अजमेर में कभी हम कुल चार आने सेर के हिसाब से भैंस का घी खरीदा करते थे। बंबइया आम जैसे बड़े-बड़े लड्डू, एक पैसे में एक गंडा। खाओ न, कितना खाओगे? आजकल तो दही-बड़े तक में मिलावट रहता है। खैर बिचारे पांडे जैसे लोग, अब सचमुच कष्ट पाते हैं। खाने में पहले जैसा करतब नहीं दिखा पाते। खाने के बाद हजम करने के लिए छोटे लाल की पाचक-गोलियां भी खानी पड़ती हैं। सचमुच ऐसे लोगों के खासे बुरे दिन आ गये हैं।'

मैंने पूछा, 'भई, दुनिया में इतने-इतने पेशों के रहते हुए पांडे ने भोजन का पेशा ही क्यों अपनाया है ?'

बंगाली धर्मशाला के बाकी सब कमरे बिलकुल खाली पड़े थे। थोड़ी-बहुत ठंड भी पड़ने लगी थी। शाम से ही चारों तरफ सन्नाटा छा जाता है। उपाध्याय को भी खास काम नहीं होता।

इन कई दिनों में उसने बहुत-से किस्से सुनाये।

उपाध्याय ने ही बात शुरू की, 'आप यहीं इसी खटिए पर आ जाइए, बाबू साहब ! आपको एक मजेदार किस्सा सुनाऊं···'

हां, उस सुदूर राजपुताना के धर्मशाला में बितायी हुई रात मुझे आज भी याद है। उस दिन कहानी सुनते-सुनते काफी रात हो गयी थी। दूर, जोधपुर के पहाड़ों ने पश्चिम के आकाश को ढंक रखा था। इधर दक्षिण में तारागढ़ के ऊंचे-ऊंचे मकानों में जलती हुई रोशनी एक-एक करके बुझती जा रही थी। अजमेर जक्शन पर आने-जाने वाली ट्रेनों की चीख-पुकार उस रात की निस्तब्धता को चीरकर टुकड़े-टुकड़े किये दे रही थी···लेकिन मैं उस वक्त वहां से काफी दूर पहुंच चुका था। कहां भोजपुर, कहां कन्नौज ! कुछ होश नहीं पश्चिमी रियासत के किसी गांव में शायद रामगढ़ के राजा ठाकुर साहब पधारे हैं। ठाकुर साहब को शिकार का बेहद शौक। नर्मदा नदी के तट पर पड़ाव भी पड़ चुका है। अपने बंधु-बांधव और खुशामदी यार-दोस्तों के साथ शिकार पर निकले हुए ठाकुर साहब, दो-दो बाघ मारकर, अपने दरबारे खास में लौट आये हैं। इस वक्त उसी का उत्सव चल रहा है। जो लोग ढाक-ढोल, कनस्तर पीट-पीटकर बाघ को घेर-घारकर, बंदूक की नली के सामने ले आये थे, उन्हीं लोगों को खिलाने-पिलाने का दौर चल रहा है। लगभग तीन सौ लोगों की भीड़। पुलाव, लड्डू, तरकारी, दही, गुलाब-जामुन—कहीं किसी चीज की कमी नहीं रखी। सब-के-सब मर-भुक्के खटमलों की तरह पत्तल चाट-पोटकर साफ कर गये।

नर्मदाप्रसाद ने हुक्म दिया था—जो जितना खा सके, पेट भरकर खाये। जो जितना मांगे, उसे खिलाया जाये।

सभी लोग खाने पर टूट पड़े। किसी को भी किसी तरफ देखने की फुर्सत नहीं। अंत में सबका पेट भर गया। भंडार खाली हो गया। सभी लंबी-लंबी डकारें लेते हुए, ठाकुर साहब को सलाम ठोंककर अपनी-अपनी राह लगे।

लेकिन एक आदमी अभी तक डटा हुआ था। उसे और खाना चाहिए। लड्डू या गुलाब जामुन या पेड़ा या दही—कुछ भी मिल जाये।

लेकिन अब तो भंडार में कुछ भी नहीं बचा। कहां से दिया जाये? सारा कुछ तो खत्म हो चुका।

ठाकुर साहब को खबर भेजी गयी, 'एक जन अभी अतृप्त रह गया।'

'कौन है वह?'

'हुजूर, कोई गंवई आदमी है! इस मुहल्ले में रहता है। हुजूर की परजा है।'

हां, चलकर देखना चाहिए, कैसी प्रजा है! कैसा हैरतंगेज खवैया है, जो सारा कुछ खा-पीकर उजाड़ कर सकता है!

नर्मदाप्रसाद ने उसके सामने हंटर घुमाते हुए पूछा, 'कौन हो तुम? क्या नाम है?'

हुजूर की परजा यानी वह गंवई आदमी उस वक्त खाली पत्तल के सामने चुपचाप हाथ पर हाथ धरे बैठा था।

उसने जवाब दिया, 'हुजूर, मैं दामोदर पांडे हूं! जात का ब्राह्मण!'

'हूं ऽ ··' नर्मदाप्रसाद ने लंबी-सी हुंकारी भरी। शायद वे किसी सोच में पड़ गये थे। कुछेक पल बाद उन्होंने पूछा, 'क्यों, तुम्हारा पेट नहीं भरा?'

'जी-न्ना ! हुजूर !'

'और खाओगे ?'

'जी हां !'

'और कितना खा सकते हो ?'

'आप जितना खिलायें, हुजूर !'

हुजूर फिर किसी सोच में गुम हो गये। ठेठ गांव के अंदर उनकी कचहरी। आस-पास कहीं हलवाई की दुकान भी नहीं। शहर यहां से तीस कोस दूर। मुसाहिब, दोस्त, यारबख्शी भी पास ही खड़े थे। वे लोग भी सारी बातचीत सुन रहे थे।

हुजूर ने सवाल किया, 'मेरे साथ राजमहल में चलोगे? नौकरी करोगे ?'

उन दिनों दामोदर पांडे बेकार था। सिर्फ अपना पेट पालना भी पहाड़ हो उठा था। दोनों जून खाना भी मयस्सर नहीं। सारी दुनिया को हजम कर जाने वाली दावानल-सी भूख ! ऐसे इंसान को नौकरी का लोभ दिखाना ? यह तो वही हाल हुआ—खाने का बुलउआ, पेट में बैठा हउआ !

दामोदर ने सिर्फ इतना ही पूछा, 'काम क्या करना होगा, हुजूर ? मैं तो पढ़ा-लिखा भी नहीं हूं। अपना नाम तक नहीं लिख सकता।'

ठाकुर साहब ने कहा, 'नहीं ! लिखने-पढ़ने का काम नहीं करना होगा। सिर्फ भोजन करना होगा...'

भोजन ! भला यह भी कोई काम है ?

ठाकुर साहब के लाव-लश्कर के साथ दामोदर पांडे भी रवाना हो गया। यहां से तीस कोस दूर रायगढ़ के ठाकुर साहब का राजमहल। राजमहल तो आखिर राजमहल ठहरा ! चारों तरफ हंगामा मच गया। ठाकुर साहब भी निहायत कम-उम्र थे। अटूट पैसा, अटूट दौलत ! मुसाहिब और यार-दोस्तों का

दल मुफ्त की रोटी तोड़ा करता। गाने-बजाने वालों की अलग मंडली। जरूरत पड़ने पर मुजरा करने के लिए बाई जी भी बुलायी जाती थीं। नाच-गान की महफिल गर्म हो उठती। कभी-कभार शिकार का भी आयोजन होता। ठाकुर साहब के पास हाथी है, कुत्तों का झुंड है, हिरण, बाघ, सिंह, पंछी — सभी तरह के जानवर हैं। बंदूक, रायफल, मोटरगाड़ी, पालकी, साइकिल — सभी कुछ है! ये सब चीजें पुश्तैनी हैं—पहले भी थीं, आज भी हैं। सिर्फ एक ही चीज की कमी थी। अब वह भी आ गयी। भई, यह आदमी करता क्या है?·· भोजन करता है।

ठाकुर साहब की नींद सुबह देर से टूटती। दीवान जी ही सारा कामकाज निपटाते हैं। ऐसे भी दो-एक काम निकल ही आते, जो ठाकुर साहब के बिना नहीं हो सकते थे। वह भी दीवान जी ही पूरा करके, उनके सामने रख देते। कागज पर कहां दस्तखत करना होगा, वह भी उन्हें अंगूठा रखकर बताना पड़ता है। काम-काज में देर हो गयी तो महफिल का मिजाज ही चौपट! सारा मजा किरकिरा हो जायेगा। उसके बाद राजा साहब अपने अड्डेखाने में आ विराजते। यह कोठी राजमहल से बिलकुल अलग है। ऊपर-नीचे कई कमरे। ठेकेदारों ने काफी सारे रुपये हजम करने के एवज यह कोठी बनवा दी!

पहले दिन ही परीक्षा ली गयी। ठाकुर साहब को दामोदर पांडे का खयाल आ गया। उसे तलब किया गया। राजमहल में एक अजीब घनचक्कर आया है। समूचा कमरा तमाशबीनों से भर गया। ऐसा मरगिल्ला-सा आदमी भला कितना खाता होगा?

ठाकुर साहब नर्मदाप्रसाद तकिये से पीठ टिकाये बैठे थे। पान-किमाम की जैसे लूट मची हुई थी।

दामोदर पांडे हाजिर हुआ। रस्म के मुताबिक सलाम करके, हुक्म के इंतजार में खड़ा रहा।

नर्मदाप्रसाद ने पूछा, 'क्यों, बीस सेर जलेबी खा सकोगे पांडे ?'

'जी, हां !'

दामोदर हाथ जोड़े, उसी तरह खड़ा रहा। बहुत दिनों से जलेबी नहीं खायी, मन-ही-मन उसे लोभ भी हो आया।

सबकी आंखों में अचरज झलक उठा ! पूरे आधा मन जलेबी खा जायेगा ?

हलवाई को खबर दी गयी। पक्का बीस सेर जलेबी ! हां, रस निचोड़ लिया जाय।

ठाकुर साहब के खास मुलाजिम के सामने जलेबी का सामान तराजू-पल्ला पर तौला जायेगा, ताकि हिसाब में कहीं कोई गोलमाल न रहे। शाम को राजमहल में दरबार बैठेगा। वहीं दामोदर अपना खेल दिखायेगा।

शाम को आंगन में चांदनी बिछा दी गयी। गैतिहर, मजूर, चाकर, बाबू, मुसाहिब - विशाल भीड़ जम गयी। हर ओर अथाह भीड़। ठाकुर नर्मदाप्रसाद पांव-पर-पांव चढ़ाये बीच में विराजमान। हाथों-हाथ पान-किमाम की गिलोरियां। दामोदर पांडे दरबार के बीचोबीच आकर बैठ गया। उसके सामने जलेबी का हंडा रख दिया गया। दामोदर ने एक बार चारों तरफ नजर दौड़ाकर देख लिया। उसने ठाकुर साहब को दुबारा सलाम किया। अनगिनत उत्सुक आंखें उसके चेहरे पर जा टिकीं। उसके बाद शुरू हो गया खेल !

दामोदर एक-एक जलेबी मुंह में रखता गया और बिना किसी सोरा-डकार के गले से नीचे उतारता गया। सुनहरे रंग की नरम-मुलायम जलेबियां ! अभी तक हल्की-हल्की गर्म थीं। इन्हें चबाने या दांत से काटने की जरूरत नहीं पड़ी, सिर्फ गपागप मुंह में डालते जाओ।

खाने का खामोश सिलसिला जारी रहा। सब-के-सब उद्ग्रीव होकर उसे ही देख रहे थे। दामोदर एक-एक करके जलेबियां मुंह में डालता और भीड़ की आंखें भी उसके हाथ के साथ-साथ उठती-झुकती रहीं। मोटी-मोटी साइजों की बीस सेर जलेबी! सेर भर में करीब तीस जलेबियां! कुल मिलाकर छः सौ जलेबियां। जलेबियां खाने का सिलसिला दोपहर तीन बजे शुरू हुआ और खत्म होते-होते शाम हो आयी।

आखिरी जलेबी मुंह में डालते ही ठाकुर साहब ने पूरी शाबाशी दी, 'शाबाश, उस्ताद! शाबाश! जीते रहो!'

दामोदर ने सिर झुकाकर दुबारा सलाम किया।

ठाकुर साहब ने दामोदर को ईनाम देने का ऐलान किया। उन्होंने उसके सिर पर कीमती सिल्क की पगड़ी रखी। उसके लिए शहर से बादामी रंग का नागरा जूता मंगवाया गया।

सभा के तमाम लोग ताज्जुब में पड़ गये।

रात को ठाकुर साहब ने उसे दुबारा बुला भेजा। दामोदर पांडे से दरयाफ्त किया, 'कोई हाजमी गोली-वोली खाओगे? मेरे पास है।'

दामोदर ने जवाब दिया, 'इसकी जरूरत नहीं, हुजूर!'

...काफी रात गये, बावर्चीखाने से किसी ने आकर पूछा, 'पांडे जी, आज खाना खायेंगे?'

दामोदर ने छूटते ही जवाब दिया, 'खाऊंगा नहीं तो क्या उपवास करूंगा?'

इसके बाद चारों ओर दामोदर की ख्याति फैल गयी। नर्मदा प्रसाद को भी काफी यश मिला।

सबने कहा, 'ठाकुर हो तो ठाकुर नर्मदाप्रसाद जैसा!' सभी दामोदर को देखने के लिए उतावले। कभी-कभार जिल्ला-हाकिम भी इधर आ निकलते। सर-जमीन की जांच-पड़ताल के लिए

उन्हें अक्सर दौरे पर आना पड़ता था।

यह कहानी सुनकर उन्होंने भी हैरानी प्रकट की, 'वाकई! घोर ताज्जुब की बात है! आधा मन जलेबी? आप उस आदमी को मुझे दिखा सकते हैं?'

ठाकुर साहब ने कहा, 'सर, जिस दिन आप चाहें, दिखा सकता हूं।'

दामोदर को तलब किया गया। दामोदर आकर दोनों को सलाम बजा लाया। मरगिल्ला-सा चेहरा! साहब ने उसे सिर से पांव तक घूरते हुए अंग्रेजी में कहा, 'चिड़ियाघर का कोई जानवर लगता है।'

चूंकि यह वाक्य अंग्रेजी में कहा गया था, इसलिए वह समझ नहीं पाया।

ठाकुर नर्मदाप्रसाद ने कहा, 'लेकिन खाता बिलकुल राक्षसों जैसा है, सर!'

राक्षस! ठाकुर साहब के चेहरे पर गर्व-भरी हंसी चमक उठी।

साहब ने पूछा, 'भात-दाल भी खाता है?'

'जी, सर, भात-दाल तो खैर खाता ही है, लेकिन जरूरत पड़ने पर, पेट को बिल्कुल संदक बना सकता है। जाने कैसे इतना खा पाता है! गपागप बस खाये चला जाता है। पेट में जाते ही सारा-का-सारा खाना जाने कहां छूमंतर हो जाता है।'

'ऐसा अजूबा आपको मिला कहां, ठाकुर साहब?'

मजिस्ट्रेट ने भी देखने की इच्छा व्यक्त की। इस बार जलेबी की जगह लड्डू बनवाये गये। पूरा आधा मन लड्डू खाना होगा! अगर उसने खा लिया, तो खुद मजिस्ट्रेट साहब की तरफ से उसे पूरे पांच रुपये बख्शीश मिलेंगे!

खाने का फिर वैसा ही आयोजन! हलवाई बुलाकर फर्माइश की गयी—शाम तक आधा मन लड्डू तैयार करना है। माल भी सामने-सामने तौल लिया गया। चारों तरफ फिर लोगों की भीड़ जम गयी। इस बार चबा-चबाकर खाना था। काफी मुश्किल मामला था। लेकिन दामोदर पांडे भी पीछे नहीं रहा। लोगों के देखते-ही-देखते आधा मन लड्डू चबा-चबाकर खा गया। मजिस्ट्रेट साहब ने उसे पांच रुपये ईनाम दिये। चारों तरफ धन्य-धन्य मच गया।

ऐसा क्या एकाध बार ही हुआ? आज मजिस्ट्रेट साहब, कल ठाकुर साहब का भतीजा, परसों पड़ोसी जमींदार! जो सुनता, वही एक बार उसे देखने की फर्माइश कर बैठता। उसे फिर-फिर वही खेल दिखाना पड़ता। ईनाम ही ईनाम बरसने लगा। खातिर भी बढ़ने लगी।

ऐसे ही इस राजमहल के सिंहद्वार पर कभी मोटर गाड़ी आ लगी थी। उस दिन भी ऐसी ही धूम मच गयी थी। मोटर देखनें वालों का तांता बंध गया। गाड़ी का हार्न सुनते ही बच्चे, बूढ़े, जवान—सब-के-सब सड़क पर आ खड़े होते। कभी जब बाघ का शिकार करके लाया जाता, तब भी ऐसी भीड़ लग जाती; ऐसी ही तारीफें होतीं। ठाकुर साहब के चिड़ियाखाने में जब पहली बार जूनागढ़ का सिंह लाया गया, तब भी भीड़ को रोकना मुश्किल हो आया था। दामोदर पांडे भी उन्हीं जीवों की तरह मानो कोई अजूबा था। ठाकुर साहब ठहरे खामख्याली आदमी! शुरू-शुरू में उसकी खूब खातिर तवज्जो हुई; खूब-खूब वाहवाही मिली। एकदम से सिर पर ही बैठा लिया गया। उसके खाने-रहने में कहीं कोई कमी न रह जाये! तदबीर-तदारक में भी कहीं कोई भूल न रह जाये! ..

उन्हीं दिनों एक और कांड हो गया। ऐसी ही एक अजीबोगरीब

घटना लाला बाबू के जीवन में भी घटी थी। जो लोग भविष्य में महापुरुष बनते हैं, उन तमाम लोगों की जिंदगी में ऐसी ही कोई घटना जरूर घटती है! चाहे बाबा तुलसीदास हों या सूरदास या भक्त कबीर या रामदास—भगवान कब किस पर, किस रूप में 'किरपा' कर बैठें, कौन बता सकता है? भगवान का ही एक और नाम जनार्दन भी है। इसीलिए शायद शास्त्रों में लिखा है—'भोजनेच जनार्दनः'।

उपाध्याय पल-भर को चुप हो रहा। थोड़ी देर बाद उसने दरयाफ्त किया, 'रात के कितने बजे होंगे?'

मुझे याद है, उस वक्त अजमेर जंक्शन की आखिरी ट्रेन धुआं उगलती हुई प्लेटफार्म छोड़ रही थी। आम-रास्ते पर सिंधियों की पाव रोटी की दुकान पूरी तरह बंद हो चुकी थी।

उपाध्याय ने कहा, 'पांडे को तो आपने भी देखा होगा। उसे देखकर लगता है कि वह कोई ऐसा-वैसा मामूली पेटू ब्राह्मण होगा। खाने को अधातुर। लेकिन··'

उपाध्याय ने बातों की कड़ी दुबारा जोड़ते हुए कहा, 'यह सब मैंने पांडे के मुंह से ही सुना है! उन दिनों उससे ज्यादा जान-पहचान नहीं हुई थी। जब जान-पहचान गहरी हुई, वह बूढ़ा हो चुका था, बाल भी कुछ-कुछ सफेद होने लगे थे। आबू पहाड़ के अचलगढ़ के ऊपर स्वामी सूर्यानंद का अखाड़ा है। आ[illegible]

सालों में वहां अक्सर ही वह गांजे का दम लगाता हुआ या शंखिया खाता हुआ नजर आता था। कभी वहां बदन पर राख लपेटे धूनी रमाये पड़ा रहता था।

मैंने सवाल किया, 'शंखिया क्या चीज है ?'

उपाध्याय ने बताया, 'शंख का भभूत! साधु लोग शंख जलाकर राख बनाते हैं और उसी राख की गोली चढ़ाकर धुत् पड़े रहते हैं। शंखिया खाकर बदन इतना गर्म रहता है कि माघ महीने की कड़कड़ाती सर्दी में भी पुष्कर-तीर्थ में अगर नहाया जाये, तो भी पसीना नहीं मरेगा। आप यह समझ लीजिए कि भूख मिटाने के लिए दामोदर पांडे मानो कोई तपस्या कर रहा था।'

मैंने पूछा, 'क्यों ?'

उपाध्याय ने ही बताया, 'चलिए, आपको शुरू से ही सारा किस्सा सुनाता हूं, बाबू जी! कहानी सुनकर मेरा तो सिर ही घूम गया। अखाड़े में जो लोग आते हैं, अक्सर भगवान को ही प्राप्त करने के लिए आते हैं। वे लोग भजन-पूजन करते हैं। भव-संसार को त्याग करके, विश्व-संसार को हासिल करना चाहते हैं। लेकिन ऐसा अजूबा मैंने पहली बार देखा, हुजूर! दामोदर को और कोई चाह नहीं थी, वह सिर्फ अपनी भूख को भूल जाना चाहता था। भूख की धधकती हुई आग! सर्वनाशी भूख का ऐसा गहरा नशा कि वह दिन-रात छटपटाया करता।

खैर, मैं भी साधु बनने के इरादे से ही उस अखाड़े में गया था। वहां पांडे को देखकर मैं अवाक् रह गया। दुनिया में ऐसी समस्याएं भी होती हैं ? मैं हैरान था कि ऊपर वाले का यह कैसा अद्भुत खेल है।

एक दिन मैंने उससे पूछ ही लिया। उसे गांजे और शंखियां का तीन-तीन चिलम दम लगवाकर, मैंने उसे धर दबाया—

आज तुम्हें अपनी पूरी कहानी बतानी ही पड़ेगी, पांडे जी !

उस दिन पहली बार मुझे पांडे जी का सारा किस्सा मालूम हुआ।

इसीलिए तो मैंने कहा, बाबू जी, पुष्कर जी कब किस भक्त पर, कौन-सी कृपा कर बैठें, इसकी महिमा कौन समझ सकता है ? पांडे उन दिनों ठाकुर साहब के यहां ही रहता था। ऐश में खाता-पीता और काफी मस्ती में दिन गुजार रहा था। कभी जलेबी, कभी लड्डू, कभी पेड़े, कभी गुलाब जामुन, कलाकंद—हर रोज, हर वक्त, सिर्फ खाना और खाना ! जब तक खा-खाकर हजम करता रहा, तब तक नौकरी पर बहाल।'...

गांजे का लंबा दम लगाने के बाद पांडे ने दुबारा अपनी कहानी शुरू की : कुछ ही दिनों के अंदर दुबारा एक कांड हो गया। इस बार खास रानीमहल से बुलावा आ पहुंचा कि रानीमहल की रानी साहिबा मुझे अपने सामने बैठाकर खिलायेंगी यानी दामोदर को उनके सामने खेल दिखाना होगा। रानी का शौक जो ठहरा !

ठाकुर साहब ने तो महज हुक्म सुना दिया, लेकिन मैं अजीब मुसीबत में फंस गया। उस वक्त दिन के तीन बज रहे थे। ठाकुर साहब का आदमी मुझे बुलाने आ पहुंचा। मेरी आंखों पर दोहरी पट्टी बांधकर मुझे अंदरमहल में ले जाया गया। अंदरमहल के मुख्य द्वार पर मुझे किसी बांदी के हाथ सुपुर्द कर दिया गया। बांदी का हाथ थामे-थामे, अंधेरे में ही इधर-उधर टकराते-लड़खड़ाते मैं आगे बढ़ता रहा। कहीं कुछ भी नजर नहीं आ रहा था, सिर्फ कानों को साथ-साथ आवाजें सुनायी दे रही थीं। कुछ दूर

जाने के वाद एकवारगी सन्नाटा। अचानक मुझे आभास हुआ, अव हम रानीमहल में दाखिल हो चुके हैं ! उफ ! आवाज थी… कि वांसुरी ! आवाज सुनकर ही मैंने उम्र का अंदाजा लगाने की कोशिश की। नर्मदाप्रसाद शौकीन जीव ठहरे। उनके शौक का अंत नहीं। हजारों तरह के शौक ! सिर्फ वाघ, सिंह, शिकार, रुपये, नौकर या दौलत का ही शौक नहीं था, औरतों का भी शौक था। शौक की झोंक में कई-कई शादियां रचाते रहे। खूव-सूरत और हसीन औरतें ! लेकिन आज तक किसी ने उनकी सूरत नहीं देखी। कहीं उनकी एक झलक तक नहीं मिलती थी। किसी की नजर पड़ जाती तो उनकी इज्जत चली जाती। हां, चांद-सूरज-तारे—उन्हें कोई नहीं देख सकता। खास कर मर्दों की नजर में पड़ना तो सरासर गुनाह है। उन्हें देखने का हक सिर्फ एक ही मर्द को था। वह था उनका मालिक-सिरताज—मालिक ठाकुर साहव नर्मदाप्रसाद ! रात दस वजे के वाद एकमात्र नर्मदाप्रसाद ही रानीमहल में दाखिल होते। उनके रानीमहल में कुल मिलाकर छः रानियां।

मैंने यह भी सुना था, छः रानियों के छः अलग-अलग महल थे। हर रानी के लिए दो-दो वांदियां और एक नौकरानी !

नर्मदाप्रसाद के सोने का कमरा विलकुल अलग महल में था। वहां का सारा इंतजाम विलकुल अलग। ठाकुर साहव वारी-वारी से हर रानी के पहलू में रात गुजारने आते। दो महीने खत्म होते ही रानी वदल जाती; कोई दूसरी रानी उनका पहलू गर्म करने के लिए हाजिर होती।

ऐसे ही पूरा साल गुजर जाता। लेकिन उन दो महीनों रानी के ऐशो-आराम का भरपूर इंतजाम। रानी गुलाव जल में नहा-कर, राजा के साथ विहार पर निकलेगी। पान में कस्तूरी डालेगी। चांदी की थाली में खाना खायेगी; हाथी-दांत के पलंग

हाथ धोने के लिए पानी आ पहुंचा। तारीफ करने वाली सिर्फ एक जन। मैं खाना खत्म करके लौट आया। बांदी मेरा हाथ पकड़कर बाहर के दरवाजे तक छोड़ गयी। वहां किसी नौकर ने मेरी आंखों की पट्टी खोल दी। मैं कहां गया था, किस तरफ से गया, किसे खेल दिखाया, उसकी सूरत-शक्ल कैसी थी, मुझे कुछ नहीं मालूम !

...कुछ दिनों बाद ठाकुर साहब ने मुझे बुलाकर कहा, 'पांडे, अब मंझली रानी पीछे पड़ी हैं। वह भी तुम्हारा खाना देखना चाहती हैं ! वह भी तुम्हें गुलाब जामुन खिलायेंगी। लेकिन बीस सेर की जगह इक्कीस सेर खिलायेंगी यानी सेर-भर ज्यादा ! तुम खा सकोगे न ?'

मुझे राजी होना ही पड़ा। इसके अलावा और कोई उपाय भी तो नहीं था।

उस दिन भी वही सब दोहराया गया। उसी तरह आंखों पर दोहरी पट्टी बांधकर, बांदी का हाथ पकड़े-पकड़े मैं रानीमहल में पहुंचा। यह ठाकुर साहब का महल नहीं था। यहां हवा में वैसी खुशबू भी नहीं थी। माहौल में वैसी खामोशी भी नहीं थी। इस बार भी किसी ने कोई बातचीत नहीं की, न कहीं कोई आहट सुनायी दी। पूरे इक्कीस सेर गुलाब जामुन खाकर मैं चुपचाप लौट आया। नौकरी ज्यों-की-त्यों कायम रही।

इसी तरह रानीमहल में तीसरी बार बुलावा आया। इस बार संझली रानी ने बुलाया था और मुझे बाईस सेर गुलाब जामुन खाना था यानी एक सेर और ज्यादा ! कोई किसी के मुकाबले हारने को तैयार नहीं। चलो, न हारे। मैं भी बाईस सेर गुलाब जामुन सपोटकर चुपचाप लौट आया। मेरे लिए जैसे बीस सेर वैसे बाईस सेर !

इसी तरह पांच रानियों के यहां खाने के बाद, अब छठी रानी

की वारी थी।

इसी छठी रानी के यहां ही हादसा हो गया। छोटी रानी ने पच्चीस सेर गुलाब जामुन खिलाया।

खाना-पीना खत्म करने के बाद, जब मैं हाथ धोकर लौटने वाला था, मुझे लगा, छोटी रानी कुछ कह रही है—

'पान लीजिए, बाबू साहब !'

आह, कान जैसे तृप्त हो आये ! बेहद मीठी आवाज। किसी रानी की आवाज इतनी मीठी नहीं थी। मुझे लगा, छोटी रानी देखने में भी शायद सबसे ज्यादा खूबसूरत है। उनकी आवाज के सहारे ही मैंने उनकी झलक भी पा ली।

पान का बीड़ा मुंह में डालने ही वाला था कि फिर वही आवाज सुनायी दी, 'यहां नहीं ! बाहर जाकर इसे खोलकर देखिएगा, बाबू साहब !'

इतना कहकर वह चली गयी। जाते-जाते उसने बांदी को आवाज देकर मुझे बाहर तक छोड़ आने को कहा।

बाहर आने पर मेरी पट्टी खोल दी गयी। अपने कमरे में आकर मैंने वह पान का बीड़ा खोल डाला। बीड़े में एक टुकड़ा कागज। मैं तो सन्न। पान के बीड़े के अंदर तह किया हुआ कागज ! मैंने कागज खोलकर देखा, कागज पर कुछ लिखा हुआ था। मेरी कुछ समझ में नहीं आया, हुजूर ! लिखने-पढ़ने की बात तो दूर, अपना नाम तक नहीं लिख सकता। अब किससे पढाने जाऊं ? इसमें आखिर क्या लिखा है ? अगर कहीं कोई भेद की बात हो ? मैंने वह कागज मोड़कर अपनी फतुही में रख लिया। पता नहीं, कब किसी की नजर पड़ जाये।

···उस दिन ठाकुर साहब ने पूछा, 'क्यों, सारा खा लिया था न, पांडे ?'

'जी हां !'

ठाकुर साहब खुश हो गये, 'शाबाश उस्ताद, जीते रहो !'

रात को अपने कमरे में लौटकर मैंने वह खतनुमा पान का बीड़ा दुबारा खोला। स्याही से लिखे हुए कुछेक अक्षर। मेरे लिए इनका कोई अर्थ नहीं। हुजूर, उस दिन मैं पहली बार रोया था। मुझे बार-बार यह अफसोस होता रहा कि मैंने लिखना-पढ़ना क्यों नहीं सीखा। अब भला मैं इस खत का क्या जवाब दूं ? जवाब मांगा भी हो, तो मुझे लिखना कहां आता है ? मैं वह खत अपनी जेब में रखे-रखे सो गया। अगला दिन भी गहरी सोच में गुजर गया। ना, मुझे कोई कूल-किनारा नहीं मिला। बस, मैं सोचता रहता···सोचता रहता ! कभी-कभी यह ख्याल भी आता कि आखिर इस खत में क्या लिखा होगा ? जरूर कोई गोपनीय बात है, इतना तो समझ में आ गया था। राजमहल की रानी ने पान के अंदर खुद कोई खत दिया है। इसमें कोई मामूली बात नहीं हो सकती। लेकिन कौन पढ़ देगा इस खत को ?

जैसे-जैसे दिन गुजरते गये, मैं फिक्र में घुलता गया। हर वक्त घबड़ाहट से मेरी छाती धड़कती रहती—अगर कहीं एक और खत आ पहुंचा, तो ? क्या कहूंगा ? किससे सलाह लूं ? हुजूर, मारे चिंता के मेरी खुराक सूखने लगी। अब पेट में भूख की वैसी आग भी नहीं धधकती। मन-मिजाज, तबीयत, दिमाग—सब चौपट !

ठाकुर साहब ने मेरा दिनों-दिन सूखता हुआ चेहरा देखकर दरयाफ्त किया, 'क्यों, तबीयत तो ठीक है न, पांडे जी ?'

मैं ठाकुर साहब के मुंशी के सामने जाकर गिड़गिड़ाया, 'मुझे थोड़ा-सा लिखना-पढ़ना सीखा देंगे, मुंशी जी ?'

मुंशी जी हंस पड़े। उन्होंने पूछा, 'अरे, तुम लिखना-पढ़ना सीखकर क्या करोगे, पांडे जी ? इसके बजाय अगर तुम मुझे

अपना हुनर सिखा देते…'

अब क्या करूं ? मैं खुद ही बाजार जाकर हिंदी की पहली पोथी खरीद लाया। मैंने सीखने की बहुत कोशिश की, हुजूर ! बहुत मुश्किल काम था ! ना, यह अपने-आप नहीं सीखा जा सकता। फिर मैंने खत के अक्षरों के साथ, पोथी के अक्षर मिला-मिलाकर पढ़ने की कोशिश की, शायद कुछ समझ में आये ! लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। दिन-रात वह खत अपने सीने से चिपकाये, मैं भगवान को याद करने लगा। इससे पहले अपनी जुबान पर भगवान का नाम लाने की कभी जरूरत नहीं पड़ी। जिंदगी में पहली बार मैं भगवान को याद कर रहा था, हुजूर ! लेकिन भगवान भी क्या इतना सीधा-सादा है ? वह तो हमेशा टेढ़ी-मेढ़ी राहों से ही आता है। सीधी राह आये, तो आदमी सहज ही दर्शन पा जाये। लेकिन जो चीज आसानी से मिल जाती है, वह उतनी जल्दी खो भी जाती है। रात के वक्त, जब समूचा शहर नींद में बेहोश हो जाता, तब कहीं कोई आहट सुनायी देती, उस वक्त भी सिर्फ मैं जागता रहता था। अक्सर मैं अपने कमरे की खिड़की खोलकर, आकाश की तरफ टकटकी लगाये भगवान को ढूंढ़ता रहता, शायद उसके दर्शन पा जाऊं ! खैर, भगवान का दर्शन अगर इतना ही आसान होता, तब तो कोई परेशानी ही नहीं होती। वैसे भी इतने-इतने भक्तों के रहते, भला वह मुझे ही दर्शन क्यों देने लगा ? मैंने ऐसा कौन-सा पुण्य किया है ? मुझे मालूम था, मैं कितने पानी में हूं। मुझमें ऐसी कोई खूबी नहीं। न मेरे पास रुपये-पैसे, न रूप-जवानी, न वाड़ी-गाड़ी। यहां तक कि लिखना-पढ़ना भी नहीं जानता ! 'क' तक बोलते हुए जुबान कांपने लगती है। भक्त प्रह्लाद से बिलकुल उल्टा। आप लोग हिरण्यकश्यप के बारे में जानते हैं न, उसी का बेटा प्रह्लाद ! प्रह्लाद की जुबान से 'क' की जगह कृष्ण निकलता

था। 'क' बोलते हुए मेरे सिर पर तो मानो गाज ही गिर पड़ती है।

ख़ैर! उस रात भी खिड़की के पार आकाश की ओर अपलक निहारते हुए, अचानक मेरी निगाह ठाकुर साहब के महल पर जा पड़ी। आकाश छूती हुई हवेली! बिल्कुल धुंधली परछाईं। ठाकुर साहब के खास महल में रोशनी जरा देर से बुझायी जाती है। खैर, उन दिनों राजा साहब की जो खास रानी होती, उसी की किस्मत बुलंद होती। दो महीने तक वही अपने पिया की सुहागिन बनी रहती। बाकी रानियों का महल उस वक्त अंधेरे में डूबा होता। इतनी दूर से ही, मैं आंख फाड़े उस विशाल राजमहल की तरफ देखता रहता। इस महल के किसी कमरे में, कोई अपने खत के जवाब की उम्मीद में बैठा होगा। मेरा मन होता, काश, आसमान के सितारों में इस खत के अक्षर-अक्षर स्पष्ट हो उठते, तो उनका मतलब समझना आसान हो आता! लेकिन हर वक्त सिर भन्नाया रहता। नर्मदाप्रसाद हमेशा की तरह कभी शिकार पर, कभी पिकनिक पर निकल जाते। अक्सर हम सब भी उनके साथ होते। हम सब यार-दोस्तों की जमात उनके फुर्सत के पलों में अपने करतब दिखा-दिखाकर उनकी दिलबस्तगी करते। जिंदगी की नीरसता मिटाने के लिए ही तो हमें नौकरी दी गयी है—बाघ, सिंह, हिरन, दोस्त, मुसाहिब, चमचे, छः-छः रानियां और मैं।

इस बार हरिद्वार में कुंभ मेला पड़ा। उस मेले में हम सभी गये थे। नर्मदाप्रसाद का तंबू तन गया। उस दल में मैं भी शामिल था। लाव-लस्कर, नौकर-चाकर, खाना-पीना, खानसामा-बावर्ची—सभी थे। बाबू लोग ठाकुर साहब को घेरकर गाने-बजाने में व्यस्त थे। हारमोनियम, रेडियो, तबला, सितार, सारंगी और कितना कुछ! मैं भी दिन-भर वहीं बना रहता था।

किसी साधु-वावा को घेरकर उनके चेले-चामुंडे गांजा पी रहे थे। साधु-वावा भभूत रमाये बैठे थे !···उन्हें देखकर अचानक मन में अगाध भक्ति उमड़ पड़ी, हुजूर ! काश, मैं भी इनकी तरह कोई साधु होता ! काश, मैं भी सब कुछ त्याग पाता ! पापी पेट की खातिर झूठ-मूठ ठाकुर साहब की नौकरी करता हूं ! चूंकि वे जलेवी, लड्डू खिलाते हैं, इसीलिए उनके यहां चाकरों की तरह पड़ा रहता हूं। मामूली-से-मामूली कीड़े-मकोड़े भी आजाद जिंदगी बिताते हैं। किसी की तावेदारी में नहीं रहते। अपने प्रति वेहद नफरत हो आयी। एक ये लोग हैं, किसी की परवाह नहीं करते। इन्हें न कपड़े-लत्तों की जरूरत है, न मालिश के लिए तेल-फुलेल की। किसी बात के लिए ये किसी पर निर्भर तो नहीं रहते। खाना मिल गया, तो खा लिया, वर्ना फाका ! एक मैं हूं, हर वक्त खाने के लिए लार टपकाता रहता हूं । पेट है या कुआं, कभी भरता ही नहीं !

मैं भी साधुओं के जत्थे में जा बैठा। साधु मुझे चिमटा लेकर मारने दौड़े, 'भाग वेटा, भाग यहां से ! चल भाग !'

मैं वहां से हट आया लेकिन मैंने हिम्मत नहीं हारी।

अव मैं रोज नियम से उन साधुओं की मंडली में बैठने लगा। सुवह-शाम-रात—हर वक्त वहीं पड़ा रहता। अपने साथ थोड़ा-वहुत खाना भी ले जाता। मलाई या दही या आटा—कुछ-न-कुछ ले ही जाता। उन साधुओं को भोग चढ़ाता, लेकिन फिर भी किसी का मन-मंह नहीं मिला। वे लोग जव भजन गाते, मैं ताली वजाता, ताल दे-देकर मुग्ध भाव से सिर हिलाता। कभी-कभी उनके सुर में सुर मिलाकर गाने की भी कोशिश करता—

काहे उमतइला हे तेलक नाथ
नित उगारिय नित भसम साथ !

हे त्रैलोक्य नाथ, तुम बावलों की तरह, तन पर हमेशा भस्म लिपटाये, निरावृत्त क्यों फिरते हो? ख़ैर, इन सबकी वजह आख़िर कौन बताता? तुम्हारा कोई आकर्षण भी नहीं है। तुम्हें न राग व्याप्त है, न विराग! तुम तो बस भोलेनाथ हो। ये साधु भी तुम्हारी तरह माया-मोह भूल गये! ···मैं गाते-गाते मस्त हो जाता। मेरी तरफ देखने की किसी को फुर्सत भी नहीं थी। थोड़ी देर बाद मैं चुपचाप लौट आता और ठाकुर के तंबू में घुस जाता। तंबू में ठाकुर साहब अपने यार-दोस्तों के साथ गाने-बजाने और खाने-पीने में व्यस्त रहते। सबकी आंखें लाल-लाल! यहां भी मुझपर किसी की निगाह नहीं पड़ी।

उस दिन सबसे छिप-छिपाकर, रात के वक्त मैं तंबू से बाहर निकला। रात काफी जा चुकी थी। शायद दूसरा प्रहर बीत रहा था। मैं पैदल ही अकेले-अकेले साधुओं के अड्डे में जाकर हाज़िर हुआ। उस वक्त सब सो चुके थे। अकेले साधु महाराज अलाव के सामने बैठे-बैठे भगवद्‌गीता पाठ कर रहे थे—

'सर्व्वं धर्म्मान् परित्यज्या मामकेम् शरणम् व्रज:
अहं त्वाम् सर्व्वपापेभ्या मोक्षयिष्यामि मा शुच:'

मुझे देखकर साधु जी ने पूछा, 'कौन हो तुम?'

मैंने बताया, 'मैं दामोदर पांडे हूं, बाबा! ब्राह्मण हूं!'

साधु बाबा ने जलती हुई धूनी में से एक चुटकी राख निकाल-कर मेरे हाथ में रखते हुए कहा, 'ले, भाग · '

मुझे उसी तरह बैठा देखकर साधु बाबा ने दुबारा सवाल किया, 'बच्चा, कुछ और चाहिए?'

मैंने कहा, 'थोड़ी-सी किरपा चाहिए, बाबा!'

साधु बाबा को मानो दया आ गयी। उन्होंने कहा, 'बोल··· जल्दी बोल, बच्चा!'

मैंने कहा, 'एक खत पढ़ देना होगा बाबा ! मैं लिखना-पढ़ना नहीं जानता ! निरक्षर भद्र हूं…'

साधु ने कहा, 'कैसा खत ? किसका खत ? अच्छा, जा, ले आ।'

मैंने खत निकालने के लिए जेब में हाथ डाला, लेकिन खत गायब था। सामने, अगल बगल-सारी जेबें देख डालीं। मैं बौखला गया। चप्पा-चप्पा ढूंढ़ डाला। सारी जेबें उलट डालीं। बेकार ! खत आखिर गया कहां ? मेरा खून खौल गया। ऐसी अनमोल अमानत ! दिन-रात अपने सीने से चिपकाये घूमता रहा; जब जरूरत पड़ी तो गुम हो गया ! मैं जाने कैसे-कैसे संभव खयालों में भटक गया। जब अपना कुर्ता धो रहा था, तब मैंने वह खत अपने फेंटे में खोंस लिया था। जब गीला कुर्ता सुखाकर दुबारा पहना, तब उस खत को दुबारा अपनी जेब के हवाले किया। आखिर गया कहां ? अब क्या करूं ? कहीं तंबू में ही तो नहीं गिर गया ? रात तंबू में भी चप्पा-चप्पा छान मारा। अंधेरे में कहीं किसीकी आंख न खुल जाये ! अच्छा, किसीने चुरा तो नहीं ली ? किसीने पढ़ तो नहीं लिया ? तब तो वह खत का मजमून भी जान गया होगा। सारी रात खत की चिंता में जागते हुए कट गयी, हुजूर ! मुझे नींद ही नहीं आयी। अगले पल बेभाव रुलाई आने लगी। अगर मैं खुद लिख-पढ़ सकता, तो ऐसा नहीं होता। मारे रुलाई के मेरी छाती टूक-टूक हो गयी।…'

उपाध्याय ने थोड़ा दम लेकर कहा, 'इस तरह पांडे से वह खत गुम हो गया। जब साधु-मंडली अपना खेमा उखाड़कर जाने लगी

तो जाने क्या सोचकर वह भी उनके पीछे-पीछे हो लिया। ना ! अब राजमहल में लौटकर क्या करना है ? उसे अपनी जिंदगी पर ही विरक्ति हो आयी। उसने मन-ही-मन फैसला कर लिया, अब वह ठाकुर साहब के तंबू में लौटकर नहीं जायेगा। वहां जाकर फिर वही खुशामद या मुसाहिबी ! खुशामद अगर करनी ही है तो बेहतर है वह भगवान की खुशामद करे ताकि कुछ विद्या-बुद्धि, ज्ञान प्राप्त हो ! जरा धर्म-कर्म का पुण्य मिले। पता है, बाबू जी, बड़े-बड़े महापुरुषों के जीवन में कोई अहम् मोड़ शायद ऐसे ही आता है ! बाबा तुलसीदास की जिंदगानी भी शायद ऐसे ही बदल गयी थी। खैर, साहब, साधुओं के दल में पांडेराम भिड़ तो गये; लेकिन साधु बाबा के चेले भला उसे अपने साथ क्यों लेने लगे ? वे तो उसे चिमटा उठाकर मारने दौड़े। लेकिन उसने साथ नहीं छोड़ा। वे लोग रेल पर सवार हुए, दामोदर भी उनके साथ-साथ डिब्बे में घुसकर बैठ गया। किसी की उस पर नजर ही नहीं पड़ी ! दामोदर मन-ही-मन तय कर चुका था, अब वह बाकी जिंदगी इन साधुओं के अखाड़े में रहकर धर्म-चर्चा में बिता देगा। खैर, साहब ट्रेन चलती रही; स्टेशन पीछे छूटते रहे। साधु लोग गांजे का दम लगाने बैठ गये ! लोग-बाग उनके लिए तरह-तरह के पकवान ले आये। वे लोग पकवान उड़ाने में जुट गये ! साहब, हुआ यह कि दामोदर को भी जोरों की भूख लग आयी। भूख भी कोई ऐसी-वैसी ' बिल्कुल राक्षसी जैसी भूख ! सामने फेरी वालों को चक्कर लगाते देखकर उसकी आंखों तक में भूख लपलपा उठी। भूख के मारे जीभ ऐंठने लगी। उसने धोती से पेट को कसकर बांध लिया, ताकि भूख की आग कुछ कम हो सके। लेकिन भूख को भला भांसा दिया जा सकता है ? उसका नाम दामोदर था, हुजूर. पेट की भूख भला वह भूल पाता ? प्रह्लाद क्या भगवान का नाम भूल

पाया था? उसके बाप ने तो कितनी कोशिश की, भूल सका वह? बताइए!

दामोदर पांडे शायद इसी तरह साधुओं के पीछे-पीछे केदारनाथ-बद्रीनाथ या नेपाल-तिब्बत पहुंच जाता, लेकिन विचारा अजमेर स्टेशन पर पकड़ा गया। चेलों की नजर पड़ गयी, फालतू-सा आदमी संग लग लिया है। सबने मिलकर उसे जोर-जबर्दस्ती अजमेर जंक्शन पर उतार दिया। दुनिया में ऐसा कौन महाबली है, जो भगवान की महिमा समझ सके?

अनजान-अपरिचित जगह! खैर, तीर्थयात्रियों के साथ चलते-चलते एक दिन वह पुष्कर जी के चरणों में जा पहुंचा! फिर वही जस का तस! फिर वही पेट की फिक्र! पेट की आग में छटपटाने लगा। पुष्कर जी पहुंचकर खाने के अभाव में गऊ घाट पर अंजुरी-अंजुरी पानी ही गटक गया। पानी पीकर उसने सो जाने की कोशिश की। वह घाट-किनारे ही सो गया। जाने किसने तो आकर उसे जगाया—यहां क्यों सोये हो? यहां कछुआ काट खायेगा या मगरमच्छ निगल जायेगा।—वह उठकर रास्ते पर आ निकला।

लेकिन पुष्कर तीर्थ को दुनिया का श्रेष्ठ तीर्थ कहा जाता है। आप तो पढ़े-लिखे हैं, आप तो सब जानते ही हैं। यहां हर दिन पंजाबी, सिंधी, गुजराती, मराठी, बंगाली सभी जातियों के तीर्थयात्रियों की भीड़ लगी रहती है। यहां आकर लोग पूजा चढ़ाते हैं, पिंडदान करते हैं, ब्राह्मण को अन्न-वस्त्र देते हैं; गोदान भी करते हैं। पुष्कर जी में तीर्थयात्रियों का अभाव नहीं। हर महीने हजारों-हजार लोग पुष्कर ताल में 'जय! पुष्कर जी की जय' कहकर डुबकियां लगाते हैं, फिर ब्रह्म-मंदिर, सावित्री पहाड़ पर देवी मइया के मंदिर-दर्शन को चल पड़ते हैं। दामोदर पांडे भी उन तीर्थयात्रियों के पीछे-पीछे लगा रहा। भोर

फूटते ही बस और तांगों के अड्डों पर हाजिरी भरने लगा। उसने वहां के पंडों से भी हाथ मिलाया। दक्षिणा में मिली हुई रकम में आधा हिस्सा उनका !

रोज रास्ते में खड़े होकर वह आवाज़ें लगाता—ब्राह्मण हैं, हुजूर ! ब्राह्मण को भी कुछ भोजन के लिए दिया जाये, हुजूर !···

भगवान की लीला देखिए ! हर युग में भगवान भक्तों की कौन-कौन-सी परीक्षा नहीं लेते ? इस तरह जाने कितने महीने, वर्ष बीत गये, दामोदर ने कोई हिसाब नहीं रखा। उस बार कोई जमींदार साहब तीर्थ पर आये थे। पंडा महाराज ने खबर भेजी—कल धर्मशाला में मौजूद रहना, पांडे, ब्राह्मण-भोज होगा।···

यथासमय दामोदर पांडे ठाकुर साहब का दिया हुआ नागरा जूता और सिल्क की पगड़ी जमाये, हाजिर हुआ। वहां भरपेट पूरी-तरकारी, लड्डू-मलाई खाने के बाद उसने दक्षिणा की आधी रकम पंडे महाराज को थमा दी और अपने घर लौट आया। खैर, दिन किसी तरह गुजरते जा रहे थे। अचानक फिर एक घटना घटी।

इसे भगवान की लीला नहीं तो और क्या कहूं, बाबू जी ?

उपाध्याय पल-भर को फिर चुप हो रहा ! अचानक उसने पूछा, 'कितनी रात हो गयी ! आपको सोने में देर तो नहीं हो रही, बाबूजी ?'

मैंने कहा, 'नहीं, नहीं, आप कहते जाइए···'

उपाध्याय नहीं जानता कि मैं इतनी दूर तीर्थ करने नहीं आया। यहां असली कहानियां सुनने का पुण्य-सचय करने आया हूं। राजपुताना की गली-गलियों में नये-नये चरित्र देखने को मिलेंगे, इसीलिए तो इतनी तकलीफ उठाकर आया। अपने

योतिषी की भविष्यवाणी नजर अंदाज करते हुए, दुर्घटना की
ंभावना के बावजूद मैं दौलत बटोरने का लोभ-संवरण नहीं
कर पाया।

उपाध्याय ने कहा, 'सुनिए पांडे की जुबानी जैसा सुना, वही
बताता हूं।'

पांडे ने गांजे का दम लगाने के बाद कहना शुरू किया : एक दिन पंडा महाराज आकर मुझे सूचना दे गये कि रायगढ़ के ठाकुर साहब आये हैं; धर्मशाले में ठहरे हैं! ब्राह्मण-भोज कराएंगे! तुम ठीक वक्त पर पहुंच जाना!

मेरा मन बेचैन हो उठा। वही रायगढ़ के ठाकुर साहब नर्मदाप्रसाद! वे पुष्कर तीर्थ पर आये हैं। उनका ही दिया हुआ नागरा जूता, पगड़ी पहनकर मैं उनके यहां हाजिर हुआ। पुष्कर का कोई ब्राह्मण नहीं छूटा था। हर किसी को आमंत्रित किया गया था। धर्मशाले में काफी शोर-गुल मचा था। पूरे पांच सौ ब्राह्मण इकट्ठे थे। महाभोज का आयोजन! जो जितना खा सके, इत्मीनान से खाये। समूचे धर्मशाले में ठाकुर साहब के आदमी भरे हुए! कोई बाद नहीं गया। मैं जाकर एक कोने में बैठ गया। खाने का बुलावा आ पहुंचा। मुझे सिर्फ यही डर था कि कहीं ठाकुर साहब से टक्कर हो गयी, तो मैं क्या कहूंगा?

मैं खाने बैठा। वही पहले की तरह मलाई, पेड़ा, गुलाब जामुन, मालपूआ, पूरी-तरकारी! बिल्कुल इलाही कांड! सबने पेट भरकर खाया। लेकिन ठाकुर साहब नर्मदाप्रसाद नहीं दिखे। मैं बस, यह जानना चाहता था कि उनके साथ क्या छोटी रानी भी

तशरीफ लायी हैं ?

सब खा-खाकर उठ गये। मैं उस वक्त भी पत्तल के सामने डटा रहा ! मेरा पेट मानो तृप्त ही नहीं होना चाहता था। बहुत दिनों बाद ऐसा पकवान मिला था।

मुझे बार-बार लग रहा था, अभी नर्मदाप्रसाद प्रकट होकर कहेंगे, 'अरे ? तुम पांडे जी हो न ? दामोदर पांडे ?' लेकिन कहीं कुछ नहीं हुआ। खाने का सारा इंतजाम पंडा महाराज ने ही किया था। ठाकुर साहब बाहर भी नहीं आये। खैर, मैं खाना खाकर उठ गया, लेकिन घर नहीं गया।

वहीं चुपचाप खड़ा रहा ! अचानक मुंशी जी से टक्कर हो गयी, 'अरे, तुम ? पांडे जी ?'

मैंने पूछा, 'मुंशी जी, ठाकुर साहब नहीं आये ?'

मुंशी जी ने जवाब दिया, 'ना ! वे तो स्वर्ग चले गये ! उनके बेटे और विधवा रानियां आयी हैं !'

मुझे मानो चैन नहीं आया। मैं कुछ और सुनने को भी बेचैन था।

मैंने दुबारा पूछा, 'सभी रानियां आयी हैं ?'

'हां, महारानी जी और बाकी पांच रानियां !'

'पांच क्यों ? रानियां तो छः थीं !'

'लेकिन एक रानी तो चल बसी ! छोटी रानी। तुम्हें नहीं मालूम ?'

'कौन-सी रानी ?'

'छोटी रानी ने आत्महत्या कर ली। बहुत दिन हुए —सात बरस पहले। यह सब क्या आज की बातें हैं ? पिछले साल राजा साहब भी जंगल में शिकार करते हुए राम को प्यारे हुए।'

सा · त वर्ष ! मैंने मन-ही-मन हिसाब लगाया, मुझे भी पुष्कर जी आये सात वर्ष हो गये।

मैं उसी वक्त वहां से चल पड़ा, हुजूर! पैदल-पैदल चलते-चलते पुष्कर जी से अजमेर चला आया। उसके बाद सारी रात मुसाफिरखाने में बिताकर, सुबह ट्रेन पर सवार हो गया। यहां आबू पहाड़ चला आया। सब झूठ-मूठ की माया है। इसे त्याग करना होगा। भूख-प्यास, लोभ—सब! सब-कुछ! यही सारे अनर्थों की जड़ है!...

मैंने पूछा, 'उसके बाद?'

उपाध्याय ने बताया, 'उसके बाद दामोदर पांडे तुरियानंद जी के अखाड़े में गांजे का दम लगाने लगा। हर वक्त संखिया के नशे में धुत्त! वह अपनी भूख भूलना चाहता था। हां, वह पेट की भूख भूलकर कोई ऐसी चीज चाहता था, जिसे हासिल करने के बाद किसी तरह की भूख-प्यास नहीं रहती। आपके ही बंगाल के थे – लट्टू महाराज! आपने उनका नाम नहीं सुना? साक्षात् जगन्नाथ महाप्रभु ने स्वयं उन्हें दर्शन दिये थे। लट्टू महाराज भी क्षुधा-पीड़ित थे। महाप्रभु ने वरदान दिया—तुझे जो मिले, सब खाना! सब हजम हो जायेगा। हमारे इसी धर्मशाले में एक सिद्ध योगी आया था। वह कहा करता था—

मेरा नाम है गोविंद
भोजन में मिले आनंद।

तुरियानंद ने एक दिन दामोदर को बुला भेजा।

उन्होंने कहा—क्या मांगता है, बेटे?...

पांडे ने कहा—प्रभु मैं भूख की आग में जलता रहता हूं, मेरी भूख भुला दीजिए।...

तूरियानंद ने कहा—जा, अब तू निर्भय होकर खाता रह। लोग पूजा-उपासना करते हैं; तेरे लिए भोजन ही सबसे बड़ी भजन-उपासना है। जा बेटा, जो तू चाहता था, तुझे दिया।…

पांडे ने उनकी बातों का क्या अर्थ लगाया, वही जाने। जब मैं इस धर्मशाला का मैनेजर बहाल हुआ, उसे भी अपने साथ लेता आया। यहां वह कुछ नहीं करता, सिर्फ भोजन करता है। यही उसका भजन-पूजन है। छः-छः रानियों का मोह क्या मामूली मोह है, साहब? जो इन छः दुश्मनों को खत्म कर पाता है, उसे सब कुछ मिल जाता है। इसीलिए तो हमारे शास्त्रों में कहा गया है—भोजने च जनार्दनः। अच्छा, अब, सोने जाइए। काफी रात हुई। कितने बज गये, कौन जाने!'

मैंने पूछा, 'और उस सत्त का क्या हुआ? छोटी रानी का सत्त?'

उपाध्याय ने कहा, 'अरे, वह सत्त तो महज [illegible] मात्र था। जिसने स्वयं भगवान को पा लिया, उसके लिए यह सत्त अतितुच्छ वस्तु है। लाला बाबू को ही लें। जिस दिन उन्हें साक्षात् भगवान मिल गये, उसी दिन से उनका राज-पाट, कोठी-कचहरी—सब छूट पड़ गये। लट्टू महाराज जिस दिन

अगले दिन सुबह, दामोदर पांडे [illegible]
पहुंचा। मैंने गौर से उसका [illegible]
अपनी जवानी के दिनों में वह [illegible]
फीट लंबा रहा' होगा [illegible]
खास नजर में पड़ रहा [illegible]
मानो भोजन से [illegible]

देवता का प्रसाद ग्रहण करता है, वह भी उसी तरह दत्तचित्त होकर भोजन कर रहा था। वैसी ही अविचल भक्ति ! भरपूर विश्वास !

जाते समय दामोदर पांडे ने कहा, 'भगवान परम तुष्ट हुए, बाबू साहब ! भगवान करें, आपका मंगल हो ! कल्याण हो !'

लेकिन मुझे अपने ज्योतिषी मित्र की बात याद है। मेरा मंगल मकर में है, यह जानते हुए भी मैं यात्रा पर निकल पड़ा था। मुझे कौन-सी दौलत मिली, यह न उपाध्याय जान पाया, न दामोदर पांडे !

